योगविद्या

वर्ष 6 अंक 6
जून 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 60 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो 1-4: गंगा दर्शन में वसंत ऋतु 2017

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥6.13॥

अर्थ–साधक को शरीर, सिर एवं गर्दन सीधे और स्थिर रखते हुए, इधर-उधर न देखते हुए अपनी दृष्टि को नासिकाग्र पर केन्द्रित करना चाहिए।

सुदृढ और स्थिर आसन के बिना ध्यान का अभ्यास सम्भव नहीं। शरीर और मन के बीच अंतरंग संबंध है। यदि शरीर अस्थिर है तो मन भी चंचल हो जाएगा। इसलिए निरंतर अभ्यास द्वारा स्वयं को आसन में सिद्ध करना चाहिए। पद्मासन या सिद्धासन में बैठने से स्वतः ही स्नायविक और मानसिक संतुलन उत्पन्न होता है।

नासिकाग्र दृष्टि में भले ही नेत्र अधखुली स्थिति में नाक के अग्र भाग को देखते हैं, लेकिन मन को आत्मा पर ही लगाये रखना चाहिए।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर - 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद - 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 6 · जून 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 महान् भूमा-अनुभव
5 वेदान्त के उपदेश
9 योग और वेदान्त
13 ज्ञानयोग की प्रक्रिया
19 ज्ञानयोग पर विहंगम दृष्टि
32 व्यावहारिक वेदान्त
36 ज्ञानयोग में ध्यान
42 ज्ञानयोग की साधना
52 चार विद्वान्
54 जीवन के अनुभव

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

महान् भूमा-अनुभव

मैंने स्वयं को महान् अनन्त आनन्द में विलीन कर दिया।
मैं अनश्वर परमानन्द के सागर में तैरने लगा।
में अनन्त शान्ति के समुद्र में गोता लगाने लगा।
मेरा अहंभाव विलीन हो गया।
विचारों का आवेश शान्त हो गया।
बुद्धि निष्क्रिय हो गयी।
इन्द्रियाँ आत्मलीन हो गयीं।
संसार का मुझे कोई भान नहीं रहा।
मैंने अपने को प्रत्येक स्थान पर देखा।
यह एक समरूप अनुभव था।
उसमें न अन्तर था, न बाह्य था।
न 'यह' था, न 'वह' था;
न 'यहाँ' था, न 'वहाँ' था,
न 'वह' था, न 'तुम' था, न 'मैं' था।
न देश था, न काल।
न विषय था, न पदार्थ।
न ज्ञाता था, न ज्ञेय था, न ज्ञान था।
न द्रष्टा था, न दृश्य था, न दृष्टि थी।
इस लोकोत्तर अनुभव का वर्णन
कोई करे भी तो कैसे करे!
भाषा सीमाओं में बँधी है।
शब्द शक्तिहीन हैं।
स्वयं इस अनुभव का साक्षात्कार करो
और स्वतन्त्र हो जाओ।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

वेदान्त के उपदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

वेदान्त वह भव्य दर्शन है जो हमें उपदेश देता है कि जीवात्मा और परमात्मा एक हैं। जीव से संबंधित सारे भ्रम दूर कीजिये। वेदान्त आत्म-संबंधी विज्ञान है जिसके आधार पर साधक समस्त भयों, दु:खों, संकटों और भ्रमों से मुक्त होकर स्वतंत्रता भोग सकता है। वेदान्त ऐसा अद्‌भुत दर्शन है जो अज्ञानी जीव को ब्रह्मत्व के उच्चतम शिखर तक पहुँचा देता है। वेदान्त सभी रोगों के लिये संजीवन औषधि है। केवल वेदान्त के सिद्धांतों की शिक्षा पर्याप्त नहीं है, हमें व्यावहारिक वेदान्ती होना चाहिये। तभी हम मुक्त-आत्मा बन सकेंगे।

वेदान्त इस शरीर, स्त्री, संतान, सम्पत्ति आदि का मोह छोड़ने को कहता है, सारी प्रापञ्चिक आकांक्षाओं, कामनाओं और अपेक्षाओं को छोड़ने के लिये कहता है। वेदान्त सत्ता, नाम और यश की इच्छा छोड़ने को कहता है। वेदान्त संसार के साथ सारे मानसिक बन्धनों को काट देने को कहता है। वेदान्त सारी आसक्तियों को विवेकरूपी तलवार से निदर्यता के साथ काट डालने को कहता है।

कुछ अज्ञानी लोग कहते हैं कि वेदान्त अनैतिकता, घृणा और निराशावाद सिखाता है। यह बड़ी भारी भूल है। वेदान्त न तो अनैतिकता की शिक्षा देता है, न नैतिकता की उपेक्षा ही सिखाता है। जो अनैतिक हो उसके लिये ब्रह्मज्ञान असंभव है। साधक को पूर्णतया नैतिक होना चाहिये और साधन-चतुष्टय-सम्पन्न होना ही चाहिये, तभी वह वेदान्त का विद्यार्थी बन सकेगा। जो साधक विवेकी हो, नि:स्पृह हो, संयमी हो, सहिष्णु हो, धैर्यशील हो, श्रद्धालु हो, एकाग्रचित्त हो और मुक्ति के प्रति तीव्र उत्कंठा रखता हो, उससे अनैतिक व्यवहार की कल्पना कैसे की जाए? यह निरर्थक बात है। वेदान्त का कहना है कि हम शरीर के प्रति मोह न रखें, स्वार्थी न रहें और उद्विग्न न रहें तथा शुद्ध और विश्वव्यापी प्रेम विकसित करें। वेदान्त निराशावाद नहीं, महान् सञ्जीवन-रूप आशावाद सिखाता है। वेदान्त तुच्छ और भ्रमपूर्ण सुखों को छोड़ने की बात कहता है। मनुष्य शाश्वत और अनन्त आनंद तब पायेगा जब इस छोटे से 'मैं' को समाप्त करेगा। जब आप उस ब्रह्म से एक हो जाओगे तब अमर हो जाओगे। मिथ्या जगत् को त्यागोगे तो भगवान का शान्तिमय साम्राज्य पाओगे। क्या यह निराशावाद है? निश्चित रूप से नहीं। यह तो अद्भुत आशावाद है।

विषय-वासनाओं में डूबा व्यक्ति करोड़ों जन्म ले, तब भी वेदान्त के उपदेशों को समझ नहीं सकता, ब्रह्मज्ञान पा नहीं सकता। आज आप स्वयं को इस नाशवान् भौतिक शरीर से एकरूप समझते हो। आपमें दृढ़ देहाध्यास है। आप आत्मा के बारे में कुछ भी नहीं जानते। उसके अस्तित्व के बारे में भी आपमें अडिग विश्वास नहीं है।

आपके मन में अहंकार और वासनाएँ भरी पड़ी हैं। आप मृत्यु से डरते हैं। प्रत्यक्षानुभव से आत्मा को समझना होगा, तभी आपकी समझ में आयेगा कि आत्मा अमर है।

जो कुछ भी सीमित है, वह सब अनित्य है। इसका अनुभव क्या दैनिक जीवन में नहीं आता? ब्रह्म या आत्मा शरीर, मन और इन्द्रियों का सार है, अपरिच्छिन्न है, नित्य है, इसलिये आत्मानुभव करो। ॐ ॐ गाते हुये सारे दु:खों को समाप्त करो। प्रत्येक मनुष्य श्रीशंकराचार्य या दत्तात्रेय बन सकता है।

रूढ़िवादिता से बुद्धि का विकास रुक जाता है, हृदय संकुचित हो जाता है। सांसारिक पदार्थों की रूढ़िवादी सीमाओं से ऊपर उठो। निम्न प्रकृति को छोड़ो। रूढ़िग्रस्त न रहो। अपने सही स्वभाव को, सत्-चित्-आनंद रूप को पहचानो। आत्मा या ब्रह्म का चिन्तन करो। ज्ञान के सूर्य से अज्ञान का अन्धकार मिटाओ। तीनों शरीरों को, पाँचों आवरणों को हटाओ। अनन्त शान्ति और असीम आनंद का आश्रय लो।

प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रहना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति सार्वभौम शक्तिसम्पन्न शासक बनना चाहता है। दूसरों की इच्छा के अनुसार चलना कोई पसंद नहीं करता। हर कोई यह चाहता है कि दूसरे सब उसी की इच्छा के अनुसार चलें। मन-ही-मन प्रत्येक की यही इच्छा रहती है कि उसका बस चले तो हर कोई उसी से शासित हो। सभी की अपेक्षा रहती है कि उसका कोई विरोधी न रहे। इन सबका कारण वास्तव में यह है कि प्रत्येक के अंदर वह अमर और तेजस्वी आत्मा है जो सारे ब्रह्माण्ड का आधार है। वस्तुत: आप वही आत्मा हो, इसीलिये आप में वैसी इच्छा और भावना पैदा होती है। सर्वाधिपति बनने की इच्छा आपके लिये स्वाभाविक है। अधिपतित्व आत्मा का गुण है। गलती से आपने अपना स्वरूप शरीर मान लिया और शरीर, व्यवसाय, कार्यालय, स्कूल-कॉलेज, खेलकूद और जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में विरोधी न होने की अपेक्षा रखते हो। यदि आत्मानुभूति प्राप्त कर लो तो सम्पूर्ण आधिपत्य आपके अधीन हो जाए। आत्म-स्वराज्य ही आपको पूर्णतया स्वतंत्र कर सकेगा। आत्म-स्वराज्य से ही आप सारे विश्व के एकमात्र सार्वभौम चक्राधिपति बन सकोगे। इसलिये इस अद्भुत आत्मा का अनुभव करो और तीनों लोकों के सच्चे राजा बनो।

हे मानव! वास्तव में आप वह दिव्य, अमर और आनंदमय आत्मा हो। संसार के क्षणभंगुर भौतिक सौन्दर्य के प्रति क्यों आकर्षित होते हो जबकि आप स्वयं सौन्दर्य के सौन्दर्य हो, संसारभर के सौन्दर्य के मूल स्रोत हो? जब आप स्वयं असीम हो तो फिर क्यों काल से बँधे हुये हो? क्यों कहते हो कि मेरी आयु चालीस बरस है? मृत्यु से क्यों भयभीत होते हो? क्यों कहते हो कि समय बीत गया, जबकि आप कालातीत हो? क्यों कहते हो कि मैं मोटा हूँ, मैं साढ़े पाँच फुट ऊँचा हूँ, आदि? जब आप स्वयं सूर्यों के सूर्य हो, प्रकाशों के प्रकाश हो, तब सूर्य, चन्द्र और तारों को देखकर क्यों आश्चर्यचकित हो जाते हो? जब आप सम्राटों के सम्राट् हो, सर्वप्रकार की सम्पत्ति के स्रोत हो तो फिर क्यों कहते हो कि 'मेरे पास पैसे नहीं, मैं गरीब हूँ, मेरे पास फूटी

कौड़ी भी नहीं'? क्यों भीख माँगते हो? जब आप सारे विश्व के संचालक और शासक हो तब क्यों कहते हो, 'मैं लाचार हूँ, मैं आपका नम्र दास हूँ'? जब आप उस अनंत आनंद और शांति के प्रतिरूप हो, तब क्यों कहते हो 'मैं दीन हूँ, दु:खी हूँ, अशांत हूँ'?

आप अमर सत्ता हो तब मृत्यु से क्यों डरते हो? जब आप सर्वशक्तिमान् हो, तब क्यों अपने को दुर्बल अनुभव करते हो? आप सर्वथा स्वस्थ हो, फिर क्यों अपने को बीमार समझते हो? शुद्धि, एकाग्रता, ध्यान और एकात्मकता के द्वारा उस आत्मा को पहचानो। उस आत्मा में रहो। *तत्त्वमसि*– 'तुम वही हो।'

हमेशा यही अनुभव करो कि आप सर्वव्यापी, अमर, अनन्त, चैतन्यस्वरूप आत्मा हो। इसी से आपको सच्ची मुक्ति और अखण्ड सुख मिल सकेगा। अपने

संपर्क में आने वाले अपने सभी मित्रों को भी यह संदेश दो। नये समाज की रचना करना आपके हाथ में है। आप लाखों को सुख-शांति दे सकते हो।

हृदय रूपी दीपक में वैराग्यरूपी तेल डालो। भक्तिरूपी बाती रखो। सतत् ध्यान द्वारा ज्ञानाग्नि से उसे जलाओ। देखो, सारा अज्ञानान्धकार दूर हो जायेगा। आपको सत्य की प्रबल शक्ति और कांति प्राप्त होगी। आप प्रकाशित हो उठेंगे।

विवेक करना सीखो। निर्विकार बनो। वासनाओं को दूर करो। इन्द्रियों को नियंत्रण में रखो। मन को एकाग्र करो। संकल्प-विकल्प को मिटा दो। मनोनिर्मित संसार को समाप्त करो। अविद्या को निकाल दो। ब्रह्म का साक्षात्कार करो। यह वेदान्त-सार है।

दिन में प्रकाश कहाँ से मिलता है? सूर्य से। रात में जब सूर्य नहीं रहता तब प्रकाश कहाँ से मिलता है? चन्द्रमा, नक्षत्र या दीपक से। चन्द्रमा, नक्षत्र, दीपक, सूर्य आदि कोई न रहे तब प्रकाश कहाँ से आता है? आँखों से। आँखें बंद रखो तब प्रकाश कौन देता है? बुद्धि। बुद्धि में स्वच्छता है या मैल, यह कौन देखता है? 'अहं', मैं। यह अहं प्रकाशों का प्रकाश है, परमात्मा है।

रूप को पहचानना आँखों का धर्म है। रूपमात्र का आधार या अधिष्ठान ब्रह्म है। जब कोई रूप देखो तो उसके अंदर जो ब्रह्म रूपी सार द्रव्य है, उसी को पहचानो। बाहरी रूप छोड़ दो। वह असत्य है, भ्रामक है। दूसरी सभी इन्द्रियों के विषयों के प्रति भी यही दृष्टिकोण रखो। *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—मन और इन्द्रियों के सभी धर्मों को छोड़कर एकमात्र मुझ भगवान की शरण में आओ। गीता के इस श्लोक का यही तात्पर्य है।

विवेक बीज है। वैराग्य जड़ है। गुरु-कृपा वर्षा है। ब्रह्म-ज्ञान फल है। यह है ज्ञानयोग का मार्ग। नित्य और अनित्य वस्तुओं का विवेक करना जानो। प्रत्येक प्राणी और पदार्थ में आत्मा को पहचानो। नाम-रूप सब भ्रम हैं, इसलिये उन्हें हटाओ। यही सोचो कि आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आपके पास जो कुछ भी सम्पत्ति है—भौतिक, मानसिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक, उसका दूसरों के साथ बाँटकर उपयोग करो। सबमें उसी आत्मा की सेवा करो। जब दूसरों की सेवा कर रहे हो तब यही सोचो कि अपनी ही सेवा कर रहे हो। पड़ोसी से वैसा ही प्रेम करो जैसा अपने से करते हो। भ्रममूलक सभी भेदभावों को भूल जाओ। मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाली सारी बाधाओं को दूर करो। सबसे घुलमिल जाओ। निरन्तर आत्मचिन्तन द्वारा, शरीर और लिंग रहित आत्मा के निरन्तर ध्यान द्वारा अपने मन से शारीरिक भावनाओं को भूल जाओ। काम करते समय भी आत्मा में मन को लगाओ। यह व्यावहारिक वेदान्त है। यह है उपनिषदों और प्राचीन ऋषियों का उपदेश। यह है आत्मा में ही सच्चा जीवन जीने का अर्थ। दैनिक जीवन-संग्राम में इन उपदेशों का आचरण करो। निस्संदेह आप तेजस्वी योगी के रूप में विभासित होगे, जीवनमुक्त बनोगे।

योग और वेदान्त

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

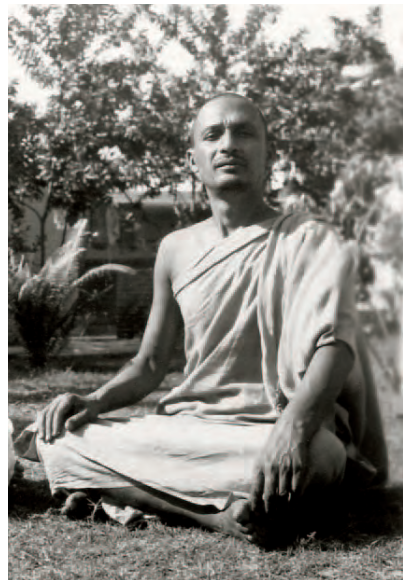

दो वियुक्त वस्तुओं के संयोग को योग कहते हैं। परन्तु हमारा लक्ष्य किन्हीं भौतिक या लौकिक वस्तुओं के योग से नहीं, बल्कि दो अलौकिक सत्ताओं का योग किस प्रकार होता है, हम इस विषय पर विचार-विनिमय करने जा रहे हैं। सबसे पहले यह बात मन में लानी चाहिए कि वे कौन-सी दो वियुक्त वस्तुएँ हैं, जो योग को प्राप्त हों। जिसे हम ज्ञानयोग कहते हैं उसका यही सिद्धान्त है कि अपने वास्तविक स्वरूप से स्खलित व्यष्टि जीव जब स्वयं को कूटस्थ के रूप में वरण करता है तो वह तत्त्वज्ञान है और इसे ही योग अथवा मोक्ष की संज्ञा भी दी गई है।

अब जीव और कूटस्थ क्या है? सर्वत्र निश्छिद्र रूपेण व्याप्त जो महाकाश है वह कूटस्थ का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि उसमें विकार की शंका नहीं। उसी प्रकार किसी उपाधि द्वारा विच्छिन्न आकाश जीव का प्रतीक है, क्योंकि वह घट-पटादि से उपाधिभूत है। व्यष्टि माया को अविद्या कहते हैं और उससे उपाधिभूत परमात्मा, जीव की संज्ञा को प्राप्त होता है। किन्तु जो निर्द्वन्द्व और निरुपाधिक महाकाशवत् निष्पक्षरूपेण 'सूत्रे मणिगणा इव' ग्रथित अथवा व्याप्त है, वह किसी अविद्यावश न होकर परमात्मा कहलाता है। यद्यपि दोनों में तारतम्य अथवा अन्तर होने की भावना काकदन्त-वत् है, फिर भी उसे वियोग कहते आए हैं, और उसके ही सम्मिलन को योग की परिभाषा दी गई है।

योग

ब्रह्मज्ञान अंत:करण की एक वृत्ति है जिसका तात्पर्य 'मैं वही हूँ' से है। इसी 'मैं' को 'वह' बनाना योग कहा जाता है। सूती वस्त्र को अपने समुद्भव स्थान कपास का ज्ञान हो, जल बुद्बुद् को अपनी उद्गम जलराशि का ज्ञान हो, वैसे ही किसी पात्र विशेष से सीमित आकाश को स्वच्छन्द महाकाश के होने का ज्ञान हो, यही एकत्व

का ज्ञान और योग की पराकाष्ठा है। यही मोक्ष और ब्रह्मज्ञान है, यही जीवनमुक्ति और कैवल्य-प्राप्ति है।

इस योग के अभ्यास के लिए अनेकों मार्ग हैं और अनेकों सिद्धान्त भी। इसे चाहे राजयोग के द्वारा प्राप्त करो अथवा हठयोग या कर्मयोग के द्वारा। प्राप्य केवल एक ही है। नाना मार्ग हैं और नाना विधि-विधान। राजयोग के द्वारा साधक यम-नियमों के सोपान पर ही नैतिक दृढ़ता को प्राप्त कर लेता है, फिर ध्यान और समाधि सरलता से प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार ज्ञानयोग का साधक भी साधन-चतुष्टय का अर्जन करते हुए चारित्रिक पवित्रता प्राप्त कर लेता है, और फिर धीरे-धीरे मनन और निदिध्यासन के योग्य हो जाता है।

हठयोग पर विचार करें तो वैसे ही है। पहले साधक प्राणों के नियंत्रण में पर्याप्त श्रम करता है और तत्फलत: मन की गति निर्बल हो जाती है। ऐसा हठयोगी ध्यान की अवस्था को प्राप्त कर समाधि की ओर अनायास ही पदार्पण कर लेता है। निष्कर्ष यह हुआ कि योग की पहली सीढ़ी है चरित्र की दुर्बलताओं का निराकरण और इसे ही प्रत्येक योग के अभ्यासी के लिए प्रवेश मार्ग समझते हैं।

सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अस्तेय पर बारम्बार विचार करो और देखो तो इन वस्तुओं को प्राप्त कर लेने के उपरान्त तुम्हारे पास कुछ अप्राप्य रहता है या नहीं। ऐसा साधक चाहे राजयोग के मार्ग से गमन करता हो अथवा हठयोगी हो, अत्यल्प काल में ही समाधि को प्राप्त करेगा। वैसे ही ज्ञानयोग का अधिकारी भी। अब हमने योग की विवेचना कर उसकी पहली सीढ़ी तो चरित्र की पवित्रता बताई। साधक इसका अभ्यास आरम्भ करें। ईश्वरानुग्रह, संस्कार-अभ्युदय और गुरु कृपा से उन्हें एक-एक पग पर चिरन्तन प्रकाश मिलेगा और वे आगे जाने से रुकना नहीं चाहेंगे। असतो मा सद्गमय।

वेदान्त

श्रुतियों को वेद कहते हैं। यह अपौरुषेय और अनादि है। कालांतर में इसके दो भाग हुए। पूर्वकाण्ड मीमांसा और उत्तरकाण्ड वेदान्त कहलाया। वेदान्त को वेदशीर्ष अथवा आम्नाय-मस्तकम् भी बोलते हैं, क्योंकि यह वेदों का मूर्धाभाग है। पूर्व मीमांसा में कर्म की प्रक्रिया है और उत्तर भाग में ज्ञान मार्ग का दिग्दर्शन है। दोनों को मोक्ष का हेतु मानने वाले 'कर्म समुच्चयवादी' कहलाते हैं, किन्तु वेदान्तियों के मत में केवल ज्ञान ही मुक्ति का हेतु है, कर्म तो चित्त शुद्धि हेतु जीवन का पहला पड़ाव है। शंकर मत में कर्म चित्त-परिमार्जन और मोक्ष के अधिकार के लिए है, वस्तु-तत्त्व की उपलब्धि के लिए नहीं। किन्तु रामानुज-मध्वाचार्यादि के मत में मीमांसा का स्थान मोक्ष की चरम सीमा तक पहुँचाया गया है। जो कुछ भी हो, हम आर्य-परम्परा के संन्यासी शंकर को भगवान शंकर का साक्षात् अवतार मानते आए हैं और वेदान्त को जीवन समस्या का सरल समाधान।

वेदान्त ही हमें अभयदान देकर सर्व प्रकार की उलझनों से एकाकी मुक्ति प्रदान कर सकता है। वेदान्ती चित्त की गति को स्थगित करने के लिए किसी प्राणायाम या योग का अभ्यास नहीं करता और न करने का प्रयोजन ही समझता है। उसके मत में जीवन को तीन ही प्रक्रियाओं में विभाजित करने की रीति है—श्रवण, मनन और निदिध्यासन, और इसके पूर्व वैराग्य तथा नित्यानित्य वस्तु में विवेक। वेदान्ती जीवन की आधारशिला है वैराग्य। जब ऐहिक भोगपदार्थों में शनैः-शनैः वितृष्णा होने लगती है और मायिक वस्तुओं में उपेक्षा भाव आने लगता है तब ऐसा ही व्यक्ति वेदान्त का अधिकारी होता है।

वेदान्त की साधना है क्या? सबसे पहले साधन-चतुष्टय (विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व) का सम्पादन करना, जो अनेकानेक जन्मों में भी प्राप्य नहीं है। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान—यह षट्-सम्पत्ति तो जन्म से जन्मान्तर जाते हुए भी प्राप्त नहीं होती तो फिर दूसरी चीजों की बातें क्या करनी! जब इन सब गुणों से साधक युक्त हो जाता है तो ऐसा विधान है कि वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की सन्निधि में जाए और पूछे—'भगवन् ! श्रेय और अश्रेय क्या है? मैं क्या हूँ और यह जगत् क्या है?' ऐसे प्रश्नों के लिए श्रीमद् भगवद् गीता में भी आदेश है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥4.34॥

तदुपरान्त गुरु अपने शरणागत शिष्य को सान्त्वना देते हुए कहता है, 'वत्स, भय को त्याग दो। न यह संसार तुम्हारा है और न ही तुम संसारी हो। तुम जिस कैद में हो, उससे तुम्हारा स्वल्प ही सम्बन्ध है, अथवा है ही नहीं।' गुरु परब्रह्म और अपरब्रह्म की, अर्थात् परमात्मा और जीव की चर्चा करता है, फिर 'तत्' और 'त्वं' पदों के वास्तविक स्वरूप में अभिन्नता बतलाते हुए महावाक्यों के उपदेश देता है। 'तत्त्वमसि' अर्थात् 'तू वही है।' साधक की साधना यहाँ समाप्त होती है और वह नित्य-निरन्तर स्वरूप-अवस्थिति को प्राप्त कर गाता जाता है—*'इदं न जानेऽप्यनिदं न जाने किंवा कियद्वा सुखमस्त्यपारम्'*—अर्थात् मुझे तो इस जगत् का अथवा उस ब्रह्मपद का, किसी का भी ज्ञान नहीं है। पता नहीं यह कैसा अपार सुख है! वास्तव में ब्रह्मानुभूति की समता में संसार का कोई भी सुख, कैसा भी आनन्द कदापि नहीं आ सकता और इसीलिए तो कहते हैं—*'कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्ये निश्चयः'* अर्थात् मेरी ओर से संसार के प्रति जो कृत्य था मैंने कर दिया और उसकी ओर से मुझे जो प्राप्तव्य था, मैंन पा लिया। इसलिए मेरा किसी के प्रति कोई कर्त्तव्य या प्राप्तव्य शेष नहीं है। ऐसी अद्वैत स्थिति में जाकर साधक सिद्ध हो जाता है और उसके लिए अत्र और अमुत्र कोई कार्य नहीं रहता। धन्य है

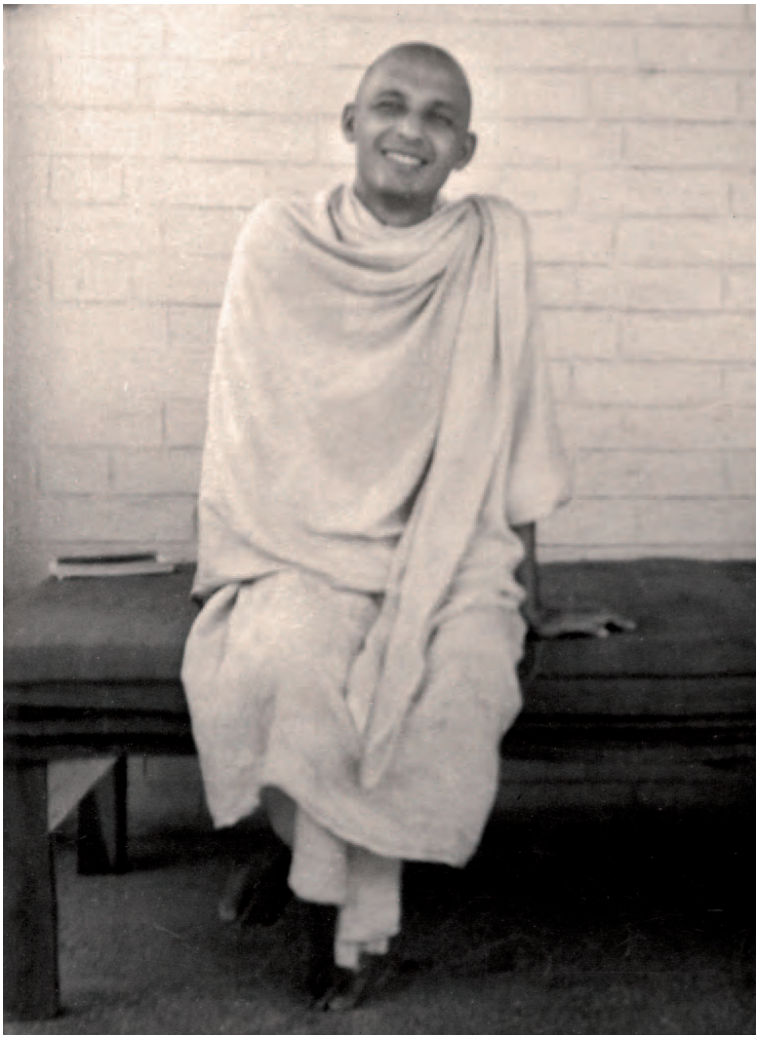

वह साधक और धन्य है वह गुरु! हम सामान्य श्रेणी के मानव दोनों के चरणों की रज को प्रसाद मान लेते हैं।

जिस मार्ग का लक्ष्य 'सांख्य' है उसी मार्ग का लक्ष्य है 'योग'–'*सांख्ययोगौ पृथग्बाला: प्रवदन्ति न पण्डिता:*'। जो पद एक के द्वारा प्राप्त होता है, दूसरे के द्वारा भी वही मिलता है–'*यत्सांख्यै: प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते*'। साधकों की अभिरुचि पर दोनों निर्भर हैं। जो योग है वही वेदान्त है।

–मूलत: योग विद्या के जुलाई 1968 अंक में प्रकाशित

ज्ञानयोग की प्रक्रिया

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

उपनिषदों के अनुसार ज्ञानयोग ध्यान की अवस्था और प्रज्ञा की प्रतिभा प्राप्त करने का साधन है। इस नाम से प्राय: लोगों में कुछ भ्रान्ति उत्पन्न होती है। ज्ञान को महज बौद्धिक जानकारी मान लेने से यह योग केवल बौद्धिक या मानसिक क्षमता को बढ़ाने वाले साधन के रूप में ले लिया जाता है। बुद्धि और मन का उपयोग हम जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के विश्लेषण में करते हैं, दैनिक जीवन से सम्बन्धित विविध प्रश्नों और समस्याओं का निदान पाने के लिए करते हैं, किन्तु इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञानयोग से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह प्रक्रिया तो हम अपने जीवन में प्रतिदिन करते ही हैं। यदि कोई प्रश्न हमें परेशान करता है तो हम या तो स्वयं उसका उत्तर पाने की कोशिश करते हैं या कुछ लोगों से बातचीत करते हैं या कुछ पुस्तकों को पढ़ते हैं। किसी प्रश्न का उत्तर पाने का जो सामान्य साधन है वह ज्ञानयोग का अंग नहीं है।

अब इस बात पर विचार करें कि वह ज्ञान, समझ या अनुभव कैसा है जिसे आप आन्तरिक ध्यानात्मक सजगता की अवस्था में ग्रहण करते हैं। क्या उस ध्यानात्मक अवस्था में ज्ञान का स्वरूप बौद्धिक होगा? यह एक विचारणीय बिन्दु है। क्या वह ज्ञान पूर्व के मानसिक अनुभवों और अनुबन्धनों तक सीमित होगा? नहीं, क्योंकि वह ध्यानात्मक सजगता विक्षिप्त मानसिक शक्तियों को संकेन्द्रित करके सही दिशा में प्रवाहित करती है, जिसके परिणामस्वरूप मन अधिक शांत और एकाग्र होता है। इस एकाग्र, शांत मन:स्थिति में कुछ ऐसी झलकें मिलती हैं जो हमें जीवन के एक अन्य आयाम का अनुभव प्रदान करती हैं। यह आयाम मन और चेतना के सामान्य आयाम से बिल्कुल भिन्न होता है।

इसलिए ज्ञानयोग न तो हमें किताबी कीड़ा बनाने वाला योग है, न ही यह ऐसा योग है जिसमें किसी प्रश्न का बौद्धिक या तर्कसंगत उत्तर पाने के प्रयास में हम अपने सिर को उलट-पुलट कर दें। यह गहन आत्मान्वेषण के भाव से निदेशित ध्यानात्मक योग है। इसमें हम अपनी प्रज्ञाजनित क्षमताओं एवं प्रतिभाओं के प्रति सजग होते हैं। यही प्रतिभाएँ हमारे पूर्वाग्रहों से भरे मन की सीमाओं को तोड़ती हैं और इस प्रकार हमें अपने जीवन एवं चेतना के स्रोत के समीप लाती हैं। इसलिए ज्ञानयोग को ध्यान का एक अंग मान सकते हैं।

आत्मविश्लेषण

ज्ञानयोग की प्रक्रिया आत्मविश्लेषण के साथ प्रारम्भ होती है। इस आत्मविश्लेषण का स्वरूप अमूर्त या अस्पष्ट नहीं, एकदम निश्चित और सुस्पष्ट होता है। वास्तव

में प्रत्याहार और धारणा के अभ्यासों को ज्ञानयोग के अंग के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है, क्योंकि इन अभ्यासों के द्वारा हम स्वयं का विश्लेषण करते हैं। विचारों के स्तर पर क्या हो रहा है? हम अपने विचारों, भावनाओं तथा अनुभवों से किस प्रकार प्रभावित और नियंत्रित हो रहे हैं? क्या हम में उन्हें स्वेच्छापूर्वक रोकने या वापस करने की क्षमता है? शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और बौद्धिक पहलुओं के प्रसंग में इस प्रकार के आत्मविश्लेषण को ज्ञानयोग का एक अंग कहा जा सकता है। कोई भी चीज जो हमें स्वयं के बारे में ज्ञान प्रदान कर रही है वह महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जब तक हम अपने व्यक्तित्व के आधारभूत सिद्धान्तों को नहीं समझ लेते, ज्ञानयोग के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकते।

हम ज्ञानयोग की मौलिक संरचना से प्रारम्भ करें। सर्वप्रथम हमें अपनी आवश्यकताओं पर विचार करना होगा। हमारे शरीर, मन और भावनाओं की क्या आवश्यकतायें हैं? हमारी सामाजिक और पारिवारिक आवश्यकतायें क्या हैं? इन आवश्यकताओं के प्रति हमारी धारणा पूर्णत: स्पष्ट होनी चाहिए। 'हमें वस्तुत: क्या चाहिये'—यह हमारे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। महत्त्वाकांक्षा का पहलू इससे भिन्न है। इसके बाद हमें यह देखना और विश्लेषण करना है कि हमारी विशेषतायें और सामर्थ्य क्या हैं तथा हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में ये किस प्रकार सहायक हो सकते हैं। अपने व्यक्तित्व की इस आधारभूत समझदारी से मन का भटकाव या बिखराव रुक जायेगा। इस भटकाव या बिखराव का कारण उन अन्य हजारों विचारों का अन्तरागमन और निवेश है जो हमारे जीवन से अप्रासंगिक रूप से जुड़े हुए हैं।

इसलिए जीवन के विभिन्न पहलुओं को सुव्यवस्थित करने के लिए योग उपनिषदों द्वारा ज्ञानयोग की अनुशंसा की गई है। इनमें सलाह दी गई है कि हम अपने जीवन को किस प्रकार सँवारें और सजावें। सर्वप्रथम हमें यह जानना चाहिए कि हमारा जीवन क्या है, कैसा है? अपने जीवन की दिशा का स्पष्ट बोध होना आवश्यक है। तभी हम अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ कर सकते हैं।

अनुभवात्मक ज्ञान

यह स्मरण रखिये कि ज्ञानयोगी कोरे विद्वान् नहीं होते। इस सन्दर्भ में एक अच्छी कहावत है, 'विद्वान् प्रतिदिन पाते और ज्ञानयोगी प्रतिदिन खोते हैं।' विद्वान् क्या प्राप्त करते और ज्ञानयोगी क्या खोते हैं? विद्वान् किताबी ज्ञान प्राप्त करते हैं। कई विद्वान् ऐसे हैं जिन्होंने अनेक शास्त्रों को कंठस्थ कर लिया है। वे सहजता से अनेकों का उल्लेख कर सकते हैं, प्रमाण दे सकते हैं। किन्तु यदि वह किताबी ज्ञान उनके जीवन, कर्म, विचार, विश्वास और व्यवहार पर लागू नहीं होता तो उसका क्या लाभ? दूसरी तरफ, ज्ञानयोगी प्रतिदिन इस प्रकार के ज्ञान को खोते चले जाते हैं,

क्योंकि वे ऐसी किसी चीज को सीखना व्यर्थ मानते हैं जिसका उनके जीवन में उपयोग न हो। यदि किसी चीज को जीवन पर लागू न किया जा सके तो उसे क्यों प्राप्त किया जाए? यदि कोई ऐसी चीज है जिसका वे अपने जीवन में अनुभव और उपयोग कर सकते हैं तो वे उस प्रकार के अनुभवात्मक ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

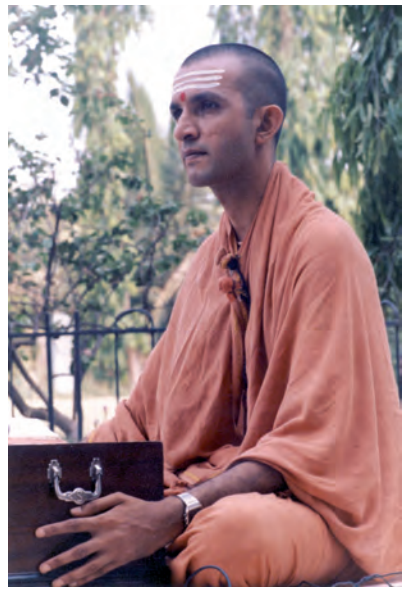

ज्ञानयोग के सम्बन्ध में यही यौगिक दृष्टिकोण है। यह खोना ही सम्भवत: ज्ञानयोग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है और यह ज्ञान शब्द में निहित अर्थ के विपरीत है। सामान्यत: 'ज्ञान' का तात्पर्य उस ज्ञान से है जिसे हम ग्रहण करते हैं। किन्तु योग में ज्ञान की अवधारणा इसके बिल्कुल विपरीत है। आप खोते हैं, क्योंकि यौगिक दृष्टिकोण का सम्पूर्ण आधार अनुभवात्मक ज्ञान और बोध प्राप्त करना है। विश्लेषण की यह प्रक्रिया शरीर और मन की आवश्यकताओं से प्रारम्भ होती है और धीरे-धीरे आध्यात्मिक बन जाती है।

मैं कौन हूँ?

आध्यात्मिक अन्वेषण का सर्वाधिक मान्य विषय है– 'मैं कौन हूँ?' यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं जिसका उत्तर आप तत्काल दे सकें। आप यह नहीं कह सकते कि 'मैं राम कुमार हूँ' क्योंकि वह तो सिर्फ एक नाम है, एक सामाजिक पहचान है जो आपको अपने श्याम कुमार नामक पड़ोसी से अलग करता है। 'मैं कौन हूँ?' का उत्तर शारीरिक या सामाजिक अर्थों में नहीं दिया जा सकता। यह तो अन्वेषण के किसी अन्य स्तर पर है। मैं अनेक लोगों से मिला हूँ जो स्वयं को ज्ञानयोगी मानते हैं। वे कहते हैं, 'स्वामीजी, मैं रोज नाश्ते से पहले पाँच मिनट तक स्वयं से पूछता हूँ कि मैं कौन हूँ, और तब काम-काज के लिए जाता हूँ।' कभी-कभी इन लोगों पर मुझे हँसी आती है, क्योंकि ये ऐसे प्रश्न नहीं जो आप भोजन से पूर्व पाँच मिनट तक स्वयं से पूछें।

रमण महर्षि एक महान् ज्ञानयोगी थे। इस प्रश्न का उत्तर पाना ही उनकी सम्पूर्ण खोज का सारतत्त्व था। रात हो या दिन, जाग्रत अवस्था हो या निद्रावस्था, उनके सम्पूर्ण अस्तित्व में यही प्रश्न व्याप्त रहता था। उनका व्यक्तित्व इस प्रश्न की तीव्रता से स्पन्दित होता रहता था। यह वैसा ही था मानो वे एक ऊँची चट्टान की धार पर

खड़े हों। जब उनकी शारीरिक चेतना समाप्त हुई तो वे सम्पूर्ण सत्ता में विलीन हो गये, प्रबुद्ध और मुक्त हो गए।

जब आप एक खड़ी चट्टान की धार पर खड़े होते हैं तो उस समय भी एक सहारा, एक पहचान, एक विचार बना रहता है—मैं यह हूँ और मैं धार पर खड़ा हूँ। किन्तु यदि मैं चट्टान से शून्य में कूद जाऊँ तो मुझे किस चीज का सहारा मिलेगा? किसी चीज का नहीं। शून्य तो शून्य ही है न! वहाँ तो कुछ नहीं है। जब तक व्यक्ति स्वयं शून्य नहीं बन जाता, वह वास्तव में यह नहीं समझ सकता कि आत्मा क्या है। उसे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता कि 'मैं कौन हूँ।' इस दृष्टान्त का सम्बन्ध ज्ञानयोग की अन्तिम अवस्था से है जहाँ साधक को अन्तिम छलाँग लगानी ही पड़ती है।

अन्तर्ज्ञान की जागृति

ज्ञानयोग की मध्यवर्ती अवस्था में अन्तर्ज्ञान की दीप्तियाँ प्रकट होती हैं। वैज्ञानिक आविष्कार, कलात्मक सृजन और संगीत रचना के क्षेत्र में अन्तर्ज्ञान की इन दीप्तियों का अनुभव किया जा सकता है। आइन्स्टाइन, दा विन्सी, माइकेलेन्जेलो तथा बीथोवन जैसी महान् हस्तियों के साथ ऐसा हुआ। कैसे? जब किसी चीज के लिए मन पर धुन सवार रहती है और उस बिन्दु पर पूर्ण एकाग्रता हो जाती है, तब हमारे व्यक्तित्व की गहराई में निहित शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

यदि आप किसी चीज के लिए वास्तव में बहुत चिन्तित, उत्सुक या व्यग्र हैं तो उस समय आप उपस्थित समस्या के प्रति प्रबलता से सजग रहते हैं। पूर्व में आपके मन की जो बिखरी हुई प्रकृति थी वह उस समय समाप्त हो जाती है। पूर्ण मानसिक सजगता की उस अवस्था में आपके व्यक्तित्व की गहराई में निहित शक्तियाँ स्वयं को प्रकट करती हैं। मन की वह प्रबलता एक धुन, एक सनक बन जाती है। यहाँ उसी धुन या सनक की चर्चा ऐसे लोगों के जीवन के सन्दर्भ में की जा रही है जिन्होंने सकारात्मक रूप में इसका अनुभव किया है। किन्तु उसी धुन या सनक का अनुभव जब मन की विक्षिप्त अवस्था में होता है तो वह अत्यधिक तनाव का कारण बन जाता है।

यद्यपि आइन्स्टाइन, दा विन्सी या माइकेलेन्जेलो ज्ञानयोग के बारे में कुछ नहीं जानते थे, किन्तु आज हम उन्हें ज्ञानयोगियों की श्रेणी में रख सकते हैं। वे पूर्वपरिभाषित और पूर्वकल्पित ज्ञान तथा विचारों की सीमाओं के परे चले गए, वहाँ कुछ प्राप्त किया और उसे लेकर पुन: वापस आ गये। आइन्स्टाइन के साथ भी ऐसा ही हुआ। वे पूर्वकल्पित ज्ञान और विचारों के क्षेत्र के परे चले गए। उन्होंने अपने प्रज्ञात्मक आयाम से कुछ छाँट लिया, चुन लिया, उसे लेकर वापस आये, तथा अपना सारा जीवन उसे बुद्धिसंगत बनाने में लगा दिया।

मन एक रेडियो के समान है जिसे समस्वरित किया जा रहा है। समस्वरण की इस प्रक्रिया में यह अचानक किसी ऐसे केन्द्र से जुड़ जाता है जो किसी विचित्र भाषा में प्रसारण कर रहा है। हमने उस समय जो कुछ सुना उसे अपने मानस-पटल पर वापस लाते हैं, उसके बारे में सोचने लगते हैं। हमने जो सुना वह क्या था? सामान्यत: हम उस केन्द्र से पुन: सम्पर्क नहीं कर सकते क्योंकि या तो तरंगें बहुत क्षीण होती हैं या संचार बन्द हो जाता है, और हम यह भी नहीं जानते कि अगला संचार कब होगा। सूक्ष्म स्पन्दनों के साथ यह समस्वरण ही ज्ञानयोग का मध्यवर्ती पहलू है।

प्रश्नात्मक मन

अब तक हमने तीन पहलुओं पर विचार किया है। व्यावहारिक आत्मविश्लेषण प्रारम्भिक पहलू था। किसी विशेष स्पन्दन या तरंग से स्वयं को समस्वरित करना मध्यवर्ती पहलू था और तीसरा पहलू था खड़ी चट्टान के ऊपर से महाशून्य में कूद जाना। यही अन्तिम अवस्था है। किन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिए—यदि आप ज्ञानयोग के मार्ग पर चलना चाहते हैं और आप यह सोचना शुरू करते हैं कि आपको स्वयं से क्या प्रश्न पूछना चाहिए तो आप अभी ज्ञानयोग के लिए तैयार नहीं हैं। उस समय प्रश्न एक प्रेरणा, एक आवेग बन जाता है जो बौद्धिक, मानसिक या तार्किक नहीं होता। उस भावनात्मक प्रबलता में प्रश्न एक वैचारिक विषय न रहकर आपके अस्तित्व का एक अंग बन जाता है। न सिर्फ मन और बुद्धि, बल्कि आपका सम्पूर्ण अस्तित्व उत्तर की खोज में तल्लीन हो जाता है। चिन्ता, बिखराव और विक्षिप्तता से युक्त मन में ऐसी प्रबलता या तीव्रता उत्पन्न नहीं होगी।

इसलिए ज्ञानयोग का अभ्यास ध्यान में कुछ हद तक पूर्णता प्राप्त करने के बाद ही होना चाहिए, जबकि आपने स्वयं को एक ध्यानात्मक अवस्था में स्थापित कर लिया है। इस ध्यानात्मक अवस्था में मन समस्वरित और संतुलित रहता है। अनेक बार गुरु इस प्रकार की मानसिकता विकसित करने में साधक की सहायता करते हैं। किन्तु जब हम गुरु की चर्चा करते हैं तो हमें एक भिन्न अर्थ में सोचना चाहिये। अनेक बार गुरु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिष्य का मार्गदर्शन करते हैं ताकि वह विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव कर सके। तब शिष्य अप्रत्याशित रूप से कुछ ऐसी अवस्थाओं का अनुभव करने लगता है जो अनाध्यात्मिक मानी जाती हैं या जो शिष्य के अब तक के जीवन के अनुकूल नहीं हैं। इस स्थिति में मन में अनेक प्रश्न उठने लगते हैं। ये प्रश्न पहले बौद्धिक विश्लेषण के रूप में प्रारम्भ होते हैं और फिर भावनात्मक विश्लेषण होने लगता है। बाद में लाभ-हानि की दृष्टि से भी विश्लेषण शुरू होता है। मैंने क्या खोया है, क्या प्राप्त किया है? तब व्यक्ति अपनी सुरक्षा के बारे में विश्लेषण करने लगता है। मुझे साधना जारी रखनी चाहिए या नहीं? किसी ने मुझसे यह नहीं कहा कि तीन वर्षों में ऐसा होगा। नकारात्मक मानसिक प्रवृत्ति साधक को आत्मान्वेषण के मार्ग से

दूर खींचती है। जब हम गुरु-शिष्य सम्बन्ध की उस अवस्था की चर्चा करते हैं जहाँ गुरु शिष्य में ज्ञान की स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास कर रहे हैं, तो यह एक अति जटिल मामला हो जाता है। किन्तु यह निश्चित है कि गुरु शिष्य की सोच, व्यवहार और दृष्टिकोण में परिवर्तन ला सकते हैं, और ऐसा करते हुए वे यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि मानसिक सजगता और क्षमता अधिकाधिक जाग्रत हो। इस क्षमता को सकारात्मक अर्थ में समझना है न कि नकारात्मक अर्थ में।

अभ्यासों का संयोजन

ज्ञानयोग निश्चय ही एक सर्वसुलभ मार्ग नहीं है। हमारी प्रकृति और प्रवृत्तियों के अनुसार इसके साथ योग के अन्य अभ्यासों का संयोजन होना चाहिए। कर्मठ प्रवृत्ति से युक्त लोग ज्ञानयोग के अभ्यास के साथ कर्मयोग को संयोजित कर सकते हैं। भावनात्मक आवेश वाले लोग ज्ञानयोग के साथ भक्तियोग का संयोजन कर सकते हैं। अतीन्द्रिय क्षमताओं से युक्त लोग ज्ञानयोग के साथ-साथ राजयोग का अभ्यास कर सकते हैं। केवल ज्ञानयोग का अभ्यास वही लोग कर सकते हैं जो अदम्य संकल्पशक्ति के धनी हैं। ज्ञानयोग वस्तुत: ध्यान का पूरक है। ध्यान के साथ इसका संयोग होने पर कालान्तर में यह समाधि में रूपान्तरित हो जाता है, क्योंकि समाधि आत्मा का अनुभवात्मक ज्ञान है। ध्यान में मन का सम्पूर्ण तादात्म्य या विलय हो जाता है। ज्ञान में उस विलयन का पूर्ण अनुभवात्मक बोध रहता है। इस तरह ज्ञान और ध्यान के संयोग से समाधि की प्राप्ति होती है।

–'योग दर्शन' से उद्धृत

ज्ञानयोग पर विहंगम दृष्टि

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

यह आश्चर्य की बात नहीं कि आज योग ने एक परिपूर्ण विद्या का दर्जा हासिल किया है और समाज के प्रत्येक वर्ग में योग को मान्यता मिली है, चाहे वह फैशन, उद्योग, खेल जगत्, चिकित्सा क्षेत्र, शिक्षा, सेना, पुलिस या आम आदमी का जीवन हो। इतना ही नहीं, सियाचीन की बर्फीली चट्टानों से थार के रेगिस्तान की कठिन परिस्थितियों को झेलने में योग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। बच्चे-बूढ़े-नौजवान, स्त्री-पुरुष, अमीर-कंगाल, सभी ने आज योग को तहेदिल से स्वीकार किया है। दुनियाभर में योग की माँग है और अब कोई संदेह नहीं कि योग समाज का अभिन्न अंग बन चुका है।

आखिर योग की इस लोकप्रियता का रहस्य क्या है? योग को इतनी व्यापक मान्यता क्यों मिली? सच पूछें तो इसका जवाब बहुत सरल है, जो एक ही वाक्य में बतलाया जा सकता है—योग में मानव समाज की हर समस्या को हल करने की क्षमता है। मानव व्यक्तित्व के अलग-अलग स्तर हैं, जिस कारण उसकी आवश्यकतायें भी नानाविध हैं। वह हमेशा सक्रिय रहता है, जिस कारण उसे कुछ-न-कुछ करने की इच्छा सताती रहती है। अगर उसे कुछ करने को न मिले तो वह उदास हो जाता है। इसके अलावा मनुष्य बुद्धिजीवी है जिस कारण वह हमेशा अपने चारों ओर एक तर्क की दुनिया बुनते रहता है। कोई बात उसे तर्कहीन लगे तो वह उसे कभी नहीं स्वीकारता, भले ही वे तथ्य कितने ही सच क्यों न हों। अपनी दुनिया को वह इस तर्क के आइने के जरिए ही देखता है और अपना जीवन उसी आकार में ढालने का प्रयास करता है।

इसके ठीक विपरीत वह अत्यन्त भावुक भी है। हर समय उसके व्यवहार पर भावनाओं का गहरा असर रहता है और ये भावनाएँ इतनी तीव्र हैं कि यदि उन्हें सही दिशा नहीं दी जाए या उनका सही उपयोग न किया जाए तो वे घातक सिद्ध हो सकती हैं। भावनाओं के अतिरेक से नर्वस ब्रेकडाउन, आत्महत्या, दिल का दौरा और अनेक घातक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा मनुष्य का एक पारलौकिक व्यक्तित्व भी है जिसका परिचय उसको स्वप्न, कल्पनाओं और सूक्ष्म विचारों के रूप में होता है। और फिर मूल रूप में उसका स्वभाव आध्यात्मिक है जिसकी झलक उसकी श्रद्धा और विश्वास में साफ दिखाई देती है। एक नास्तिक भी भले ही भगवान पर विश्वास न करे, अपने आप पर और अपने अस्तित्व पर विश्वास तो करता ही है।

योग की सफलता का मुख्य कारण यह है कि वह इन सब आवश्यकताओं पर गहरा ध्यान देता है। योग की शुरुआत भले ही शरीर से हो, किन्तु उसका

दीर्घकालिक अभ्यास व्यक्ति को चेतना के उच्चतम स्तर तक पहुँचा सकता है। कर्मयोग व्यक्ति की कार्यशीलता को उन्नत बनाता है, वैसे ही भक्तियोग उसकी भावनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करता है। राजयोग उसकी अतीन्द्रिय संभावनाओं का पोषण करता है और ज्ञानयोग उसकी बौद्धिक पिपासा को तृप्त करता है। योग का यह समन्वय हमारी आध्यात्मिक खोज के लिए पर्याप्त है, क्योंकि इन विभिन्न योगों के द्वारा हमें जीवन सम्बन्धित हर एक क्लिष्ट प्रश्न का उत्तर आसानी से मिल सकता है।

शरीर और मन के परे

अनादि काल से हमारे पूर्वजों को स्पष्ट मालूम था कि अगर मनुष्य को स्वयं को सुधारना है तो यह केवल चेतना के विस्तार से सम्भव है। स्थूल चेतना का दिव्य अनुभूतियों की ओर विस्तार होने पर ही मनुष्य पशु योनि से विरासत में मिली आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन जैसी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पा सकता है। परन्तु आज की आधुनिक दुनिया में चेतना के विकास पर कोई ध्यान नहीं देता। बुद्धि के विकास का ही प्रयत्न होता है, क्योंकि आज की दुनिया में स्वाभाविक प्रवृत्ति के साथ-साथ बुद्धि की भी जरूरत पड़ती है। इसलिए जीवन में सफलता के लिए हम केवल बुद्धि पर ध्यान देते हैं।

हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि केवल बुद्धि के विस्तार से हमारी समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है। आखिर क्या तुम केवल शरीर, मन, भावना और बुद्धि हो या तुम्हारा अस्तित्व उससे परे भी कुछ है? शरीर और शारीरिक स्तर की चीजों से हम इतने आसक्त हैं कि हमारा योगाभ्यास भी केवल शरीर और मन तक ही सीमित रह गया है। लेकिन योग की पहुँच इससे भी परे है और दुनिया में आध्यात्मिक मानसिकता के अनेक लोग हैं जिनमें शरीर और मन के परे क्या है यह जानने की रुचि है। क्या यह शरीर ही अंतिम सत्य है या इससे सूक्ष्म भी कुछ है—ऐसी जिज्ञासा उनमें प्रबल है।

अपने आप को पहचानो

शरीर और मन से परे हमारे अस्तित्व के अलावा एक और प्रश्न उठता है। क्या हमारे अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड में अन्य कोई अस्तित्व है जिसका स्वरूप दिव्य है? सीधे शब्दों

में कहा जाय कि मन में देवी-देवताओं की सच्चाई का प्रश्न उठता है। भारतवर्ष में इन सवालों पर सदियों से विश्लेषण होते आया है और हमारे ऋषि-मुनियों ने इन सवालों पर सहस्राब्दियों तक खुले आम चर्चा की और अंत में वे एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे–'Know Thy Self'–अपने आप को जानो–कोऽहं।

उनके इस वक्तव्य का आधार है कि यदि तुम अपने आप को जान लोगे तो उसी क्षण ब्रह्माण्ड में सब चीजों का ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। आज वैज्ञानिक भी ऐसी ही बातें कर रहे हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य, ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है, याने कि हर मनुष्य के भीतर एक छोटा ब्रह्माण्ड छिपा है। जो कुछ बाहर दिखाई देता है– सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-तारे, पर्वत-नदियाँ, ये सब भीतर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान हैं। फर्क इतना है कि वे इसे अद्वैत वेदान्त के बदले वैज्ञानिक परिभाषा में 'यूनिफाइड फील्ड थीयरी' कहते हैं।

यूनिफाइड फील्ड थीयरी की मान्यता है कि इस ब्रह्माण्ड में सृष्टि का हर पदार्थ किसी व्यापक अदृश्य माध्यम द्वारा एक-दूसरे से जुड़ा है। विख्यात वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने कहा है, 'आँखों से दिखने वाली यह पृथकता केवल भ्रम है, असलियत में इस ब्रह्माण्ड में स्थित हम सब एक ही हैं। बस हमें अपनी सीमाओं को इतना बढ़ाना होगा कि हम सारे विश्व को अपने दायरे में समा लें।' इस संसार और सृष्टि में सभी प्राणी एक अदृश्य शक्ति से आपस में जुड़े हैं। उस अदृश्य शक्ति का दूसरा नाम परमात्मा ही है।

गौर करने कि बात है कि आज से हजारों वर्ष पहले, वैदिक काल में, हमारे ऋषि-मुनियों ने ठीक यही बात कही थी, जो वेदों और उपनिषदों में अंकित है। उन्होंने कहा था–'अणोरणीयान् महतो महीयान्।' हमारे ऋषि-मुनि हजारों वर्षों से यह कहते आये हैं कि अपने आप को जानने से हम सब कुछ जान सकते हैं, क्योंकि एक स्तर पर हम पदार्थ, दूसरे स्तर पर ऊर्जा और उससे सूक्ष्म स्तर पर चेतना हैं। और वह चेतना सर्वव्यापक है।

लगता है कि आज हमारे समाज में एक बीमारी आ गयी है। हमारी सोच और समझ, हमारे वैचारिक प्रश्न केवल बाहर तक ही सीमित रहते हैं। बातें तो हम अध्यात्म की करते हैं जरूर, पर अटके हैं पदार्थवाद और विषयों की वृत्ति में। अध्यात्म में हमारी रुचि केवल एक दिमागी खुराफात है। और इससे यदि हमें कोई जवाब मिल भी जाए तो हम उस पर और प्रश्न करने लगते हैं, क्योंकि बुद्धि और मन का तो स्वभाव ही शक और प्रश्न तक सीमित है। सच तो यह है कि हमें मन और बुद्धि द्वारा आध्यात्मिक प्रश्न का उत्तर कभी नहीं मिल सकता और पदार्थवाद एवं इन्द्रियों के वश में रहकर हमें सच्चा आनन्द मिलना असम्भव है। हाँ, यदि तुम्हारी पदार्थवादी जीवन जीने में रुचि हो तो तुम्हें पूरा हक है, लेकिन तुम्हारे चुने रास्ते से हटकर चलने वालों पर ऊँगली उठाने का तुम्हें कोई हक नहीं बनता। यदि कोई मन और पदार्थ

के परे बसी चेतना का अनुभव करना चाहे और तदनुकूल जीवन पद्धति चुने तो उसे वैसे जीने का उतना ही हक है।

बहिरंग और अंतरंग योग

इन दो तरह के लोगों के लिए दो भिन्न प्रकार के योग मार्ग हैं—बहिरंग और अंतरंग। जो योग आज दुनिया भर में हजारों-लाखों की संख्या में युवाओं और वृद्धों को शरीर और मन की तंदुरुस्ती के लिए सिखलाया जा रहा है वह बहिरंग योग है। परन्तु आंतरिक चेतना के विस्तार के लिए एक और योग है, जिसको अंतरंग योग कहते हैं। बहिरंग योग लाभदायक अवश्य है, पर यदि तुम अपने में मूलभूत रूपांतरण चाहते हो तब तुम्हें अंतरंग योग को अपनाना पड़ेगा। हाँ सच है कि बहिरंग और अंतरंग योग एक-दूसरे से अलग नहीं, क्योंकि बहिरंग योग अन्त में व्यक्ति को उस बिन्दु तक ले जाता है जहाँ वह गहराई में छिपे सूक्ष्म तत्त्व का अनुभव करने लगता है और उसका झुकाव अंतरंग जीवन की तरफ जाता है।

अंतरंग जीवन का मतलब है चेतना की गहराई तक पहुँचना। यदि तुम अपनी चेतना को संभाल सको तो तुम जीवन के हर पहलू को संभाल सकोगे, क्योंकि चेतना ही तुम्हारी परिपूर्णता है। फिर तुम्हें न तो योगा थेरॉपी और न ही फिटनेस योगा की आवश्यकता होगी, क्योंकि तुम्हारी सब समस्याएँ चेतना के विकास द्वारा सम्भल जाएँगी। आखिर चेतना वह मूल स्रोत है जहाँ से शरीर, मन, भावना और बुद्धि उत्पन्न हुए हैं। जब जड़ तक जाने में तुम सफल होगे, तब उसकी शाखाएँ अपने आप सुधर जाएँगी। चेतना की गहराइयों को खोज निकालना ही आंतरिक जीवन का तात्पर्य है, क्योंकि अगर तुम अपनी चेतना को व्यवस्थित कर सको, तब तुम्हारा समस्त व्यक्तित्व अपने आप ही व्यवस्थित हो जायेगा।

आत्मा की खोज

योग का मुख्य लक्ष्य चेतना का विस्तार एवं विकास है और ज्ञानयोग इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ज्ञान शब्द के मूल धातु का अर्थ है जानना। क्या जानना? हमें शब्द, रस, स्पर्श, गन्ध और रूप की बाहरी दुनिया के बारे में सब मालूम हो सकता है जो हमें कान, मुख, त्वचा, नासिका और आँखों द्वारा ज्ञात होता है। इसे अपरा ज्ञान कहते हैं जो समय के अधीन है और जिसका अंत मृत्यु है। परन्तु यह ज्ञानयोग का विषय नहीं।

ज्ञानयोग का विषय है आत्मा। वह आत्मा जिसे हम चेतना या कुण्डलिनी शक्ति जैसे अनेक नामों से सम्बोधित कर सकते हैं। चाहे जिस नाम से हम पुकारें, उसका तात्पर्य एक अनादि और अनंत तत्त्व से है। ज्ञानयोग का विषय केवल और केवल आत्मा के बारे में जानना, सोचना, सुनना और समझना है। यह आत्मा क्या है और

इसका स्थान कहाँ है? क्या यह शरीर में बसती है या शरीर के बाहर? यह आत्मा शरीर में कहाँ से प्रवेश करती है और अन्त में कहाँ जाती है? क्या यह शरीर की तरह नश्वर है? ज्ञानयोग में ये ही प्रश्न पूछे जाते हैं, जो परा विद्या की श्रेणी में आते हैं।

जब ऋषियों ने कहा, 'अपने आप को पहचानो' तब उनका संकेत इसी अविनाशी तत्त्व की ओर था। उसी आत्मा को जानो जो अमर है, जिसे अग्नि जला नहीं सकती, और न ही तलवार काट सकती है। जब ऋषियों ने मनुष्य को आत्मविचार करने का सुझाव दिया तब उनका मतलब यही था कि आत्म साक्षात्कार का प्रयत्न करो। अनादि काल से अनेकों ने इस मार्ग को अपनाकर आत्मा के स्वरूप को जानने की चेष्टा की है। ऐश और आराम के जीवन को पीछे छोड़कर, सब चीजें त्यागकर वे केवल आत्मा को जानने के लिए जीते थे।

जब विश्व का सबसे शक्तिशाली सम्राट् सिकंदर यूनान से भारत को पराजित करने निकला तब उसके गुरु अरस्तु ने उसे भारत के उन ऋषि-मुनियों के बारे में बतलाया जो केवल आत्मज्ञान के लिए जीते थे। अरस्तु ने कहा, 'तुम भारत जा रहे हो जहाँ ऐसे अनेक महात्मा हैं जिन्होंने विषय भोग से ऊपर उठकर आत्मज्ञान प्राप्त किया है। तुम अपना समय केवल भौतिक पदार्थों को जीतने में मत गवाँना। तुम्हें पदार्थ के परे आत्मा को जीतने का तरीका भी उन ऋषियों से सीखना चाहिए।'

भारत भ्रमण के दौरान गुरु की आज्ञा को मन में रखकर जहाँ भी सिकंदर गया वह हमेशा ऐसे महात्माओं की खोज करता रहा। एक दिन जंगल के एकान्त में एक दिगम्बर साधु पत्थर पर बैठे मिले। सिकंदर फौरन उस दिगम्बर साधु के पास गया। उसे आश्चर्य हुआ कि एक विश्वसम्राट् और उसकी शक्तिशाली सेना के सामने वह

महात्मा जरा भी प्रभावित नहीं हुआ। सिकंदर ने उससे पूछा, 'क्या तुम्हें मेरा सामना करने में कोई डर नहीं? आखिर मेरे पास इतनी बड़ी सेना है जो तुम्हें इस क्षण बन्दी बना सकती है।' यह सुनकर वह साधु केवल हँसकर चुप रहा। अभिमान के मद में चूर सिकंदर को यह साधु किसी पागल से कम न लगा, क्योंकि वहाँ नंगे बैठे उस साधु ने एक सर्वशक्तिमान् सम्राट् के मुँह पर हँसने का साहस दिखाया।

फिर सिकंदर में एक जिज्ञासा जगी और उसने साधु से अनेक प्रश्न किये जिनके उत्तर से सिकंदर इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने गुरु की प्रसन्नता के लिए उस सिद्ध महापुरुष को अपने साथ यूनान ले जाने का विचार किया। सिकंदर ने उस मुनि को, जिनका नाम कल्याण था, सभी प्रकार के ऐशो-आराम के प्रलोभन दिये, धन-दौलत का लालच दिया, परन्तु कल्याण मुनि ने इन्कार कर दिया। जब कोई भी प्रलोभन काम नहीं किया तब सिकंदर ने अपनी शक्ति इस्तेमाल की और धमकी देकर कहा कि अगर वह उनके साथ नहीं गया तो वह उसे मार डालेगा। पर कल्याण मुनि को कुछ फर्क नहीं पड़ा। वे हँसकर बोले, 'तुम मुझे कुछ नहीं कर सकते। किसे मारोगे? मैं तो अमर आत्मा हूँ जिसे तलवार काट नहीं सकती और न ही अग्नि जला सकती है।' मुनि की आस्था में अत्यन्त बल था। क्षणमात्र के लिए भी वे नहीं डगमगाये। साक्षात् मृत्यु के सामने भी उन्हें आत्मा पर अटूट विश्वास था। इस श्रेणी का व्यक्ति ही ज्ञानयोग साधना का पात्र है। जब तक श्रद्धा अटल न हो और मन प्रश्नों और शंकाओं से मुक्त न हो, तब तक आत्मा का अनुभव करना नामुमकिन है।

आत्मा को जानना है तो बहुत सरल, पर साथ ही साथ क्लिष्ट भी, क्योंकि जीवन में हम सरल चीजों को हमेशा नजरअंदाज कर देते हैं। हमारी दृष्टि हमेशा बड़ी-से-बड़ी और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि को हासिल करने में टिकी रहती है। नाम-यश और धन-दौलत के पीछे हम इतने पागल हो जाते हैं कि हमें ख्याल ही नहीं आता कि यदि हम उस मूल तत्त्व को जान लें तो हम सब हासिल कर सकते हैं।

आत्मा को जानना बहुत ही सरल है क्योंकि इस अनुभव के लिए कुछ भी करना आवश्यक नहीं है। न हिमालय की चोटियों पर जाने की आवश्यकता है, न सिर के बल खड़े रहने की जरूरत है, न श्वास को बंद करना जरूरी है और न किसी प्रतीक पर मन को केन्द्रित करने की जरूरत है। तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं, सिवाय आत्मा के अस्तित्व पर अटूट विश्वास रखने के। उसी आत्मा की सत्यता पर विश्वास करना जो सत्यं-शिवं-सुन्दरम् है। वही आत्मा जो तुमसे अलग नहीं है, जो ज्ञान है, जो प्रकाश है और तुम्हारे भीतर विद्यमान है। तुम्हें केवल इस पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए, उतना ही दृढ़ विश्वास जितना कल्याण मुनि को था। उतना ही दृढ़ विश्वास जिसके द्वारा तुम्हें यकीन है कि तुम स्त्री हो, पुरुष नहीं। क्या तुम्हें कभी यह शंका हुई कि तुम स्त्री हो? नहीं, इसके लिए तुम्हें कोई पुष्टि की आवश्यकता नहीं। आत्मा के प्रति ऐसा अटल विश्वास होना चाहिए, जिसे कुछ भी बहका या

बदल नहीं सकता। तब एक क्षण में आत्मदर्शन हो सकता है। ज्ञानयोग में इस प्रकार के आत्मचिंतन की आवश्यकता है।

हाँ, सच है कि हम सब में इस किस्म का विश्वास नहीं है। पर कहीं तो हमें शुरुआत करनी चाहिए। अपने इस संशययुक्त, विक्षिप्त और मतभेदी मन से ही अगर हम आत्मा के बारे में सोचना शुरू करें तो वह भी सही दिशा में उठाया एक छोटा-सा ठोस कदम होगा। लक्ष्य है मंजिल तक पहुँचना; चाहे धीमी गति से या फिर हवाई जहाज की रफ्तार से—यह तो हम पर निर्भर है। परन्तु इन प्रश्नों पर जब तक चिंतन नहीं किया जाएगा तब तक हम उस आनन्द बिन्दु का अनुभव नहीं कर सकते जिसकी हमें खोज है।

जिसकी तुम्हें तलाश है वह तुम्हारे भीतर ही है। तुम्हारे भीतर समाई सच्चिदानन्द आत्मा के कारण तुम परिपूर्ण और पवित्र हो, परन्तु तुम्हें यह नहीं मालूम। हाँ, उस दुर्लभ आनन्द के अनुभव का तुम्हें एक धुँधला नजारा जरूर है जिस कारण तुम हमेशा उसकी तलाश बाहरी दुनिया में करते रहते हो। ठीक उसी तरह जैसे कस्तूरी मृग अपने ही भीतर से उत्पन्न मादक सुगंध को बाहर खोजता है। उसे नहीं मालूम कि सुगंध का स्रोत उसके भीतर छिपा है। अविद्या के कारण वह जिंदगी भर सुगंध की खोज में दौड़ते रहता है। एक दिन सत्य को बिना जाने वह थक कर जंगल में गिरकर मर जाता है। हम भी उस कस्तूरी मृग की तरह परम आनंद को बाहर ही खोजते रहते हैं, जबकि वह आनन्द हमारे भीतर समाया है।

ज्ञानयोग के सोपान

ज्ञानयोग की शुरुआत आत्मा के अस्तित्व और उसके स्वरूप की जिज्ञासा से होती है। जैसे हठयोग, राजयोग, भक्तियोग तथा अन्य योग मार्गों में मंजिल पाने के लिए विशिष्ट अभ्यास बतलाये हैं, ठीक उसी तरह शास्त्रों ने ज्ञानयोग के कुछ विशेष अभ्यास निर्धारित किये हैं। सबसे पहले आता है श्रवण। ज्ञानयोग के सम्बन्ध में श्रवण का तात्पर्य उस सर्वव्यापक चेतना या परब्रह्म-परमात्मा के बारे में सुनना है। यदि अपनी सांस्कृतिक या धार्मिक मान्यताओं के कारण आत्मा शब्द पसंद नहीं आए, तो उस शुद्ध चेतना को आप जिस भी नाम से पुकारना चाहें, वह नाम आप इस्तेमाल कीजिए। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, परन्तु सबसे पहले आपको वहाँ जाना चाहिए जहाँ आत्मा के बारे में चर्चा होती है या जानकारी मिलती है। जैसे आप अपने मनपसंद सिनेमा या भोजन या वस्त्र-आभूषण को खोज निकालते हैं, चाहे आपको मीलों क्यों न चलना पड़े, ठीक उसी तरह आपको वह स्थान खोजना चाहिए जहाँ आत्मा की चर्चा होती है।

आत्मज्ञानियों से आत्मा का श्रवण करने पर जो तेज और ऊर्जा प्राप्त होती है उसे फिर अपने भीतर सम्भाल कर रखना चाहिए ताकि सांसारिक गतिविधियों से वह

ऊर्जा बिखर न जाए। जिस प्रकार आप कीमती हीरे को बड़ी हिफाजत से छिपाकर रखते हैं, ठीक वैसे ही आत्म तत्त्व के बारे में जो विचार आपको मिले और जो शब्द आपने सुने, उन्हें अपने भीतर संजोकर उन पर गहराई से आत्मचिंतन करना चाहिए। यह ज्ञानयोग का दूसरा अभ्यास माना जाता है, जिसको मनन कहते हैं।

अगर श्रवण के द्वारा जो हमने सुना उस पर मनन न किया जाए, तो श्रवण से प्राप्त हुआ ज्ञान बिखर जाता है। अनेक बार हम आत्मा की चर्चा सुनते हैं जिससे हम बहुत प्रभावित और प्रेरित भी होते हैं। परन्तु घर लौटने पर वापस अपनी दुनिया में खो जाते हैं। हमारी चिंता, ईर्ष्या, द्वेष, राग, लोभ, क्रोध इत्यादि हम पर हावी होकर सब भुला देते हैं। ऐसा नहीं होने देना। तुम्हारा स्वभाव जैसा हो वैसे रहो, पर आध्यात्मिक मार्ग को यह समझकर पकड़े रहो कि वह बहुत ही अमूल्य चीज है। जब तुम अकेले अपने कमरे में रहो तब उसके बारे में चिंतन और मनन करो। मजे की बात तो यह है कि जितना तुम आत्मा के सत्य पर चिंतन करोगे उतनी ही वह तुम्हें अपने

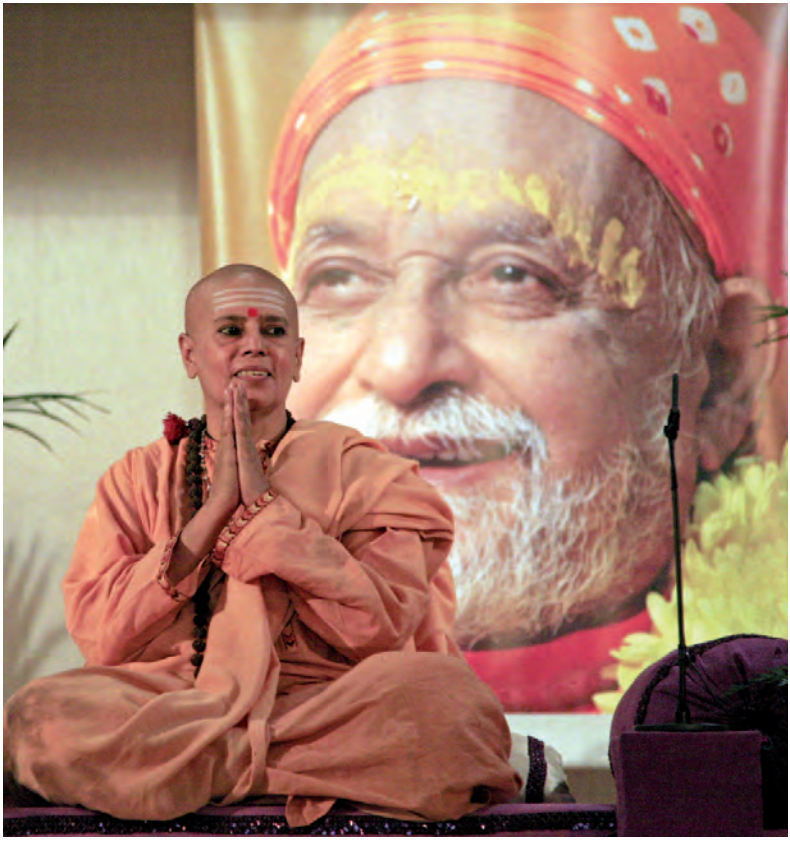

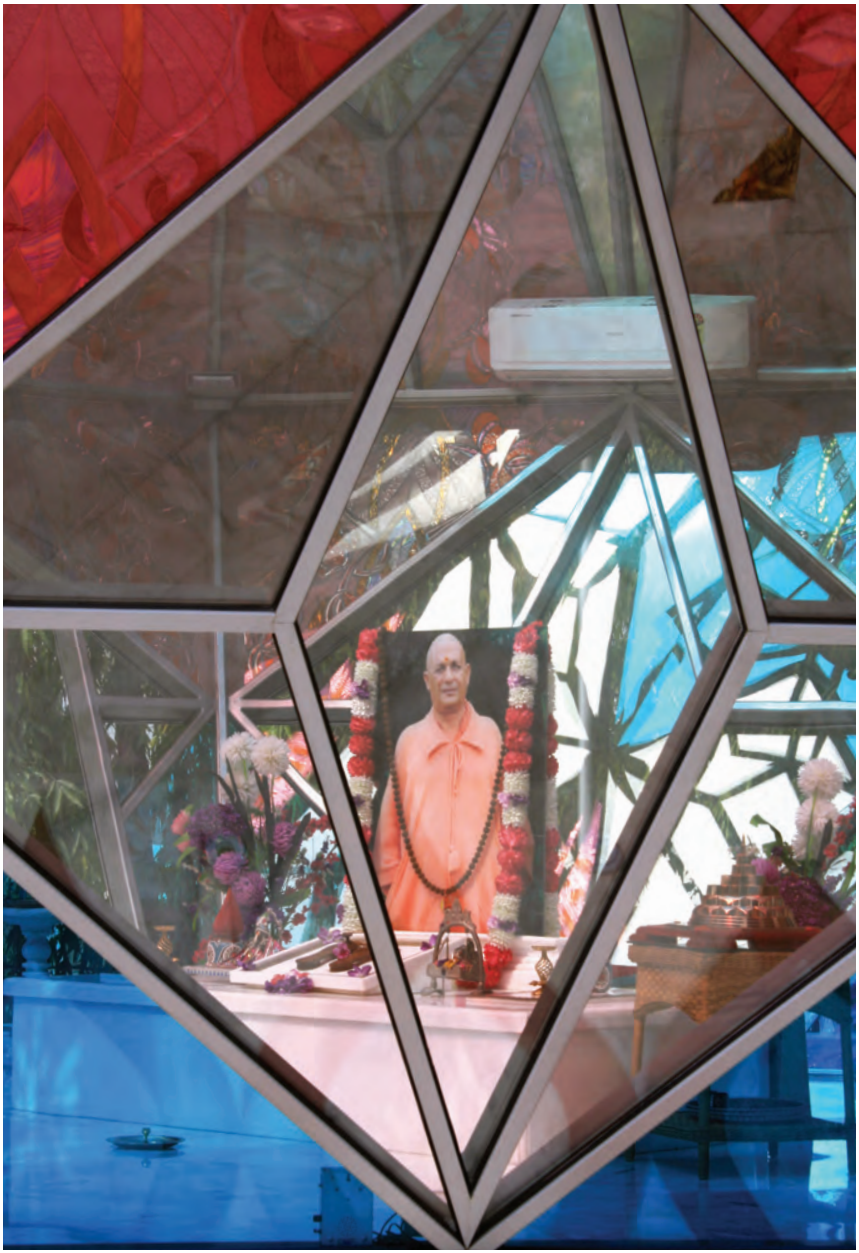

बारे में झलक देती रहेगी। तुम सत्य की ओर एक कदम बढ़ाओ और सत्य तुम्हारी ओर छलांग लगाकर अनेकानेक चीजों का उद्‌घाटन करता है। यही सत्य आत्मा की शक्ति है और अगर ऐसा न होता तो हम उस आत्मशक्ति को सर्वश्रेष्ठ कैसे कह सकते? वह तो सर्वश्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है, इसीलिये उसमें तुम्हारा मार्गदर्शन करने की क्षमता है। तुम्हे बस सच्चे दिल से चेष्टा करने की आवश्यकता है। और जैसे ही तुम इस तरह सत्य पर मनन करते हो, अनायस ही ध्यान लग जाता है। कोई प्रयास की आवश्यकता नहीं। अपने से, बिना चेष्टा के आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह ज्ञानयोग का तीसरा अभ्यास है, जिसे निदिध्यासन कहते हैं।

ज्ञानयोग के ये तीन सोपान हैं, श्रवण–सुनना; मनन–चिंतन करना और निदिध्यासन–ध्यान करना। अब आप यह पूछ सकते हैं कि 'मेरे लिये यह कितना व्यावहारिक है? मुझे घर-समाज में सौ-सौ काम रहते हैं। ऐसे में आत्मा के बारे में चिंतन करना कितना सम्भव है?' इसके जवाब में हम यही कहेंगे कि अगर आपके समाज में सच्चाई जानने का न कोई स्थान है, न ही रुचि, तो उस समाज को त्याग देना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि सच्चाई के मार्ग पर कोई समझौता नहीं हो सकता। कल्याण मुनि ने मृत्यु के सामने भी आत्मा पर अपने विश्वास के साथ कोई समझौता नहीं किया। उसी तरह सत्य रोज के बदलते हुए समाज के साथ कोई समझौता नहीं करता। सत्य अनादि है और यदि हमारे समाज में सत्य की कोई जगह नहीं है, तो ऐसे समाज का क्या उपयोग? हमें चयन करना होगा कि क्या हम सत्य के साथ जीना चाहते हैं या असत्य के साथ। हो सकता है कि हम में समाज को बदलने की ताकत न हो, परन्तु अपने आप को बदलने की क्षमता तो अवश्य हर व्यक्ति में रहती है।

आत्म-चिंतन एक व्यक्तिगत क्रिया है और किसी भी परिस्थिति में इसका अभ्यास निश्चित रूप से किया जा सकता है। हर रोज जब सब काम हो जाएँ, सोने के पहले आत्मचिंतन के लिए थोड़ा समय दिया जा सकता है। या फिर सुबह उठकर इन विषयों पर कम-से-कम दस मिनट मनन किया जा सकता है। आप एक डायरी भी रख सकते हैं जिसमें आप दिन-ब-दिन अपने अनुभवों और विचारों को अंकित कर सकते हैं। यह सरल अभ्यास आप को बहुत सारी सच्चाइयों से अवगत कराएगा।

इस प्रक्रिया को ज्ञानयोग कहते हैं और इसका अभ्यास तभी सम्भव है जब मन की वृत्तियों पर हमारा बस चले। अन्यथा आत्मचिंतन के लिए बैठते ही मन उन चीजों की ओर भागता है जिसका आत्मा के साथ कोई लेना-देना नहीं। कोई मित्र याद आ जाता है या कोई शत्रु जिसे आप पसंद नहीं करते। ये सब विचार सामने आने लगते हैं और आत्मा के विचार लुप्त हो जाते हैं। असलियत तो यही है और इसीलिए ज्ञानयोग का अभ्यास गुरु के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

–'योग सत्संग' से उद्धृत

व्यावहारिक वेदान्त

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रत्येक व्यक्ति को व्यावहारिक वेदान्ती बनना चाहिये। सिद्धान्तों पर लम्बे-चौड़े भाषण देना बौद्धिक उछल-कूद मात्र है। इससे काम नहीं चलता। यदि वेदान्त व्यवहार में नहीं लाया गया, तो सिद्धान्त का कोई मूल्य नहीं। अपनी दिनचर्या के प्रत्येक व्यवहार, प्रत्येक कर्म में वेदान्त को उतारिये। वेदान्त आत्मीय एकता की शिक्षा देता है। आपका सबके प्रति प्रेम होना चाहिए। वेदान्तनिष्ठा रग-रग में, रोम-रोम में, अस्थि-मांस-मज्जा में सर्वत्र फैल जानी चाहिये; प्रत्येक का स्वभाव बन जाना चाहिये। हमें एकता की बात सोचनी चाहिये, एकता की बात करनी चाहिये और एकता का ही काम करना चाहिये।

मंच पर खड़े होकर आप व्याख्यान दें कि 'मैं सर्वरूप हूँ, मैं सबमें विद्यमान आत्मा हूँ, मेरे सिवा कुछ और है ही नहीं' और फिर दूसरे क्षण अपने व्यवहार में स्वार्थ और भेदभाव भरा दृष्टिकोण अपनायें तो समाज पर कोई प्रभाव नहीं होगा। ऐसा व्यक्ति शुष्क वेदान्ती कहलायेगा, जिसकी परवाह कोई नहीं करेगा। यदि वेदान्ती से एकात्मता और समता की सुगन्ध अपने आप नहीं निकल रही है और वह वेदान्त का व्याख्यान ही देता-फिरता है तो समझना चाहिये कि वह ग्रामोफोन की भाँति शब्द दोहराने के सिवा और कुछ नहीं कर रहा है। उसके शब्द हवा में चलायी जाने वाली गोली की तरह खोखले हैं। श्रोताओं के मन पर वह कोई छाप नहीं डाल सकता। लेकिन अगर वेदान्ती सच्चा है तो उसे कहना नहीं पड़ेगा कि 'मैं वेदान्ती हूँ, मैं वेदान्त की साधना कर रहा हूँ।' सच्चे वेदान्ती से अद्वैत-सुरभि निकलती है और स्वत: चारों तरफ फैलती है। ऐसे सच्चे वेदान्ती के संपर्क में आनेवाले सभी लोग इस सुगन्ध का आनंद पाते हैं।

देखिए, राजा जनक ने किस प्रकार जीवन व्यतीत किया। राज्य पर शासन करते हुए भी उन्होंने वेदान्त को व्यावहारिक जीवन में उतारा। राजा जनक से अधिक व्यस्त व्यक्ति की आप कल्पना भी नहीं कर सकते। वे लाखों व्यक्तियों पर शासन करते थे। फिर भी वे ज्ञानी, गम्भीर विचारक, दार्शनिक तथा व्यावहारिक वेदान्ती थे। उन्हें अपनी सम्पत्ति, अपने शरीर तथा परिवार के साथ कोई आसक्ति नहीं थी। वे अपनी सम्पदा सभी के साथ बाँटते थे, सभी के साथ मिलकर रहते थे। वे समदृष्टि तथा समत्व-बुद्धि से सम्पन्न थे। विलास में रहते हुए भी उनका जीवन बड़ा ही विरक्त था। बाह्य प्रभावों से वे जरा भी विचलित नहीं होते थे। उनका मन सदा शान्त रहता था। पारमार्थिक विषयों पर वे ऋषियों के साथ वाद-विवाद किया करते थे। यही कारण है कि वे आज भी हमारे हृदय में निवास करते हैं।

वेदान्त हिमालय की गुहाओं और जंगलों में रहने वाले संन्यासियों की ही थाती नहीं है। उपनिषदों का अध्ययन कीजिए। आपको पता लगेगा कि बहुत-से क्षत्रिय राजा दैनिक जीवन में अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न थे। वे ब्राह्मणों को भी उपदेश देते थे।

श्वेतकेतु आरुणेय एक बार पांचालों की सभा में गये। प्रवहण जैवाली ने, जो पंचाल देश का क्षत्रिय राजा था, श्वेतकेतु से यह प्रश्न किया, 'हे श्वेतकेतु, क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हें उपदेश दिया है?' श्वेतकेतु ने कहा, 'हाँ'।

'क्या तुम जानते हो कि मरने के अनन्तर मनुष्य कहाँ जाते हैं?' 'नहीं श्रीमान्', उसने उत्तर दिया। 'क्या तुम जानते हो कि वे पुन: संसार में कैसे आते हैं?' 'नहीं श्रीमान्।' 'क्या तुम जानते हो कि देवों तथा पितरों के मार्ग कहाँ से अलग-अलग होते हैं?' उसने पुन: नकारात्मक उत्तर दिया। 'क्या तुम जानते हो कि पितृ लोक कभी मरता क्यों नहीं?' 'नहीं श्रीमान्'। 'तब तुम ऐसा क्यों कहते हो कि मुझे शिक्षा प्राप्त हुई है? जो मनुष्य इन बातों को नहीं जानता वह कैसे कह सकता है कि मुझे शिक्षा प्राप्त हो चुकी है?'

तब श्वेतकेतु खिन्न होकर अपने पिता गौतम के पास चला आया तथा उसने कहा, 'आपने मुझे उपदेश दिया नहीं, फिर भी आपने कह दिया कि तुम उपदेश पा चुके। उस राजा ने मुझसे पाँच प्रश्न किये, परन्तु मैं किसी एक का भी उत्तर न दे सका।'

तब गौतम ऋषि राजा के महल में गये। राजा ने उन्हें आदरपूर्वक बैठने के लिए आसन दिया। राजा ने कहा, 'हे ऋषिवर, ऐसी कोई भी वस्तु माँग लीजिये

जो सांसारिक मनुष्यों के लिए उपयोगी है।' गौतम ने उत्तर दिया, 'राजन्, उन सारी चीजों को अपने पास रखिए। आपने मेरे लड़के से जो प्रश्न किये, उन्हीं का मुझे उत्तर दीजिए। और यह भी बतलाइये कि आपने यह ज्ञान पाया कैसे?'

राजा ने कहा, 'हे गौतम! इससे पहले यह ज्ञान ब्राह्मणों के पास नहीं गया था, क्षत्रियों के पास ही बना हुआ था। अब यह ज्ञान मैं आपको प्रदान करता हूँ।' कितने महान् राजा थे वह!

अपने ज्ञान के स्तर की जाँच कराने के लिए शुकदेव जी को राजा जनक के पास जाना पड़ा था। राजा जनक ने अपने दरबार में उनकी परीक्षा ली। शुकदेव जी को एक दूध भरा प्याला दिया गया तथा प्रासाद के चारों ओर प्याले को लेकर बिना एक भी बूँद गिराए घूमने की आज्ञा दी गई। राजा जनक ने अपने प्रासाद में चारों ओर मनमोहक संगीत तथा नृत्य का आयोजन किया था, जिससे शुकदेव जी का ध्यान आकृष्ट हो। पर शुकदेव जी इस परीक्षा में सफल रहे, क्योंकि वे आत्मस्थित थे। उनके मन को कुछ भी विक्षिप्त नहीं कर सकता था।

एक अंग्रेज ने, जो किसी जिले का कलेक्टर था, एक रोगी को सड़क के किनारे मरणासन्न अवस्था में देखा। वह बड़ा ही दयालु व्यक्ति था। वह उस रोगी को अपने कन्धों पर लादकर पड़ोस के अस्पताल में ले गया। उसकी एकता की भावना को तो देखिए! उपनिषदों को न जानते हुए भी वह व्यावहारिक वेदान्ती था। बहुत-से लोग, यहाँ तक कि संन्यासीगण भी कहते हैं, 'गाँधी जी केवल कर्मयोगी थे। वे वेदान्ती नहीं थे।' परन्तु महात्मा गाँधी से बढ़कर व्यावहारिक वेदान्ती कोई है नहीं। वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में व्यावहारिक वेदान्त का आचरण करते थे, जिस वजह से वे

इस जगत् के आशा-केन्द्र बन गये थे। वे शुद्ध प्रेम, आत्म-त्याग, सेवा, अहिंसा, सत्य तथा ब्रह्मचर्य के जीवन्त प्रतीक थे, फिर भी वे 'अहं ब्रह्मास्मि' जैसे सिद्धान्तों का अनावश्यक विज्ञापन नहीं करते थे।

सूर्य, गंगा, पुष्प, चन्दन, फलदार वृक्ष और गाय—ये सभी जगत् को व्यावहारिक वेदान्त की शिक्षा देते हैं। ये सभी निष्काम भाव से मानव जाति की सेवा करते हैं। सूर्य राजा के महल और गरीब किसान की झोपड़ी को समान रूप से प्रकाशित करता है। पुष्प बिना किसी आशा के, बिना किसी भेदभाव के सबको अपनी सुरभि प्रदान करता है। गंगा मैया के शीतल जल का सभी पान करते हैं। कुल्हाड़ी से काटे जाने पर भी चन्दन सुगन्ध ही देता है। सारे फलदार वृक्ष भी इसी प्रकार आचरण करते हैं। वे वृक्ष की देखभाल करने वाले माली तथा वृक्ष को काटने वाले लक्कड़हारे, दोनों को समान रूप से फल प्रदान करते हैं। गउएँ बच्चों, दुर्बल व्यक्तियों तथा रोगियों का पोषण करती हैं। यदि छ: महीने के लिए भी इस संसार में गउएँ न रहें तो कल्पना कीजिए इस संसार की क्या हालत होगी। हे स्वार्थी मनुष्य! इन सबसे व्यावहारिक वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करो तथा ज्ञानी बनो।

यदि जंगल अथवा गुहा में रहने वाला संन्यासी नगर में आकर अशान्ति और विक्षेप का अनुभव करे, तो इसका अर्थ है कि उसमें आन्तरिक आध्यात्मिक बल नहीं है। उसने वेदान्त को व्यावहारिक स्तर पर आत्मसात् नहीं किया है, जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है। वह अभी भी माया के फन्दे में फँसा हुआ है। वास्तविक योगी और वेदान्ती वह है जो अनेक कर्मों में व्यस्त रहते हुए भी, बाज़ार के शोरगुल में भी अपनी मानसिक शान्ति बनाये रखता है। यही गीता का मुख्य उपदेश है। भगवान कृष्ण कहते हैं, 'सदा मेरी याद बनाए रखो तथा युद्ध करते रहो।' उन्होंने अर्जुन को यह उपदेश युद्ध के मैदान में ही प्रदान किया था। यद्यपि अर्जुन प्रारम्भ में भ्रमित था, फिर भी श्रीकृष्ण के उपदेश से उसे आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई तथा उसने अनुद्विग्न मन से युद्ध किया। अर्जुन अन्ततः व्यावहारिक वेदान्ती बन गया।

सभी में एक आत्मा के दर्शन कीजिए। इस मंत्र का मानसिक जप कीजिए, 'ॐ एक सच्चिदानन्द आत्मा।' नाम-रूप का निषेध कर आत्मा के अमर अधिष्ठान को प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। आत्मभाव के साथ सबकी सेवा कीजिए। सारे मिथ्या भेदों को नष्ट कीजिए। सभी राग-द्वेषों को मिटा दीजिए। सभी के साथ मिलकर रहिए। सभी को गले लगाइये। आपके पास जो भी भौतिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक सम्पत्ति हो, उसे दूसरों के साथ बाँटिये। एक मिनट के लिए भी आलसी न बनिए। कार्यों में व्यस्त रहिए, परन्तु सदा मन को शीतल तथा शान्त बनाए रखिए। यही व्यावहारिक वेदान्त है। ऐसे व्यावहारिक वेदान्तियों की जय हो! वे सर्वत्र सुख, शान्ति तथा प्रेम का संचार करें! वे सत्य तथा प्रकाश के सन्देशवाहक बनें! वे अपने आदर्श जीवन द्वारा व्यावहारिक वेदान्त को चरितार्थ करें!

ज्ञानयोग में ध्यान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

लोग किसी भी सामाजिक या सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से क्यों न आएँ, देर-सबेर वे परम सत्य की खोज आरम्भ कर ही देते हैं। उनके सम्मुख वही प्रश्न उभरने लगते हैं जिन प्रश्नों का सामना प्राचीन समय के ऋषियों-मनीषियों को करना पड़ा था। सांसारिक उपलब्धियाँ भी स्थायी सुख नहीं दे पाती हैं, क्योंकि उनके अन्तर से उठने वाला प्रश्न निरन्तर उनका पीछा करता रहता है। अन्ततः वे उस अंतहीन प्रश्न, 'मैं कौन हूँ और मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है?' का समाधान ढूँढने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इस प्रश्न के माध्यम से ही वे ध्यान एवं अध्यात्म के मार्ग की ओर प्रेरित होते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी विवेकपूर्ण क्षमताएँ धीरे-धीरे विकसित होती हैं। ये क्षमताएँ आत्म-वंचना एवं अज्ञान की परतों को तब तक हटाती जाती हैं जब तक कि 'मैं कौन हूँ' के उत्तर के रूप में परम तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो जाती है। इस मार्ग को ही ज्ञानयोग कहते हैं।

ज्ञान मार्ग के पथिक इस मार्ग पर आगे बढ़ चुके ज्ञानियों के अनुभवों या उपलब्धियों से सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं। इसका कारण यह है कि सच्चा ज्ञान केवल व्यक्तिगत अनुभूतियों एवं आत्म-अन्वेषण से ही प्राप्त हो सकता है। यह प्रत्यक्ष बोध से ही सम्भव है, न कि किसी दूसरे व्यक्ति की लिखित व्याख्याओं से। मौखिक या लिखित विवरण अधिक-से-अधिक आत्मानुभूति की दिशा बता सकते हैं जो शब्दों की सीमा से परे है। इन अनुभूतियों की कभी-भी पूरी तरह व्याख्या नहीं की जा सकती।

आत्मानुभूति के लिए ज्ञानयोग के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति मुख्यतः बौद्धिक प्रवृत्ति के होते हैं। ज्ञानयोग के साधक अपने विवेक के सहारे सत्य और असत्य तथा वास्तविक एवं अवास्तविक के भेद का विश्लेषण करते हैं। इस मार्ग का अनुसरण करने के लिए दृढ़ निश्चय और संकल्प की आवश्यकता होती है। परम सत्य को प्राप्त करने के लिए सभी अनित्य और अनावश्यक तथ्यों को अस्वीकार करना पड़ता है। भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। वास्तव में ज्ञानयोगी के लिए भावनात्मक अभिव्यक्तियाँ अनावश्यक हैं, क्योंकि इनसे एकता की बजाय अनेकता का आभास मिलता है। ज्ञानयोगी को निरंतर स्वयं को एकत्व का बोध कराते रहना चाहिए। कोई भी ऐसी वस्तु जो चेतना को बहुत्व का आभास देती हो, उसे पूरी तरह अस्वीकार कर देना चाहिए। इसके लिए तीव्र एकाग्रता और संकल्पशक्ति का विकास करना चाहिए। यही कारण है कि ज्ञानयोग को सर्वाधिक कठिन मार्ग माना गया है। यह उन्नत अभ्यासियों को छोड़कर बाकी सभी के लिए कठिन है, क्योंकि इसका अभ्यास सामान्य जीवन के क्रियाकलापों और मानवीय भावनाओं के विपरीत होता है।

ज्ञानयोग में एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास करना एक सामान्य प्रवृत्ति के व्यक्ति के लिए अत्यन्त कठिन होता है, क्योंकि निरन्तर अशरीरी, परम चेतना पर मन को केन्द्रित करना पड़ता है। एक ऐसा व्यक्ति जो देश-काल, कार्य-कारण और नाम-रूप-गुण की सीमाओं में बँधा हुआ है, उसके लिए इनसे परे जाकर अपनी सजगता को स्थिर कर पाना अत्यन्त कठिन है। ज्ञानयोग में ध्यान उस आत्मतत्त्व पर आधारित होता है जो संवेदनाओं, भावनाओं या बुद्धि से परे है। ज्ञानयोग इस सृष्टि को अस्वीकार नहीं करता, बल्कि उसके सूक्ष्म सार-तत्त्व की ओर ले जाता है। ज्ञानयोगी यह जान लेता है कि बहुत्वपरक और व्यक्तिपरक संसार अपूर्ण ज्ञान का परिणाम है, जिसके मूल में सम्पूर्ण सृष्टि का एकत्व निहित है।

ज्ञान मार्ग के द्वारा प्राप्त आत्मानुभूति को आदि शंकराचार्य ने, जो एक अद्वितीय ज्ञानयोगी तथा वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक थे, अपनी रचना *निर्वाणाष्टकम्* में वर्णित किया है–

मनो-बुद्ध्यहंकार-चित्तानि नाहं, न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न वै व्योम भूमिर्न तेजो न वायुः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

ये पंक्तियाँ मनुष्य को उसके सारे भ्रमों और झूठी अवधारणाओं से मुक्त करती हैं, तथा उसके वास्तविक आत्मिक स्वरूप से उसका साक्षात्कार कराती हैं।

वस्तुतः इस संसार में ऐसे थोड़े ही व्यक्ति हैं जो मात्र विवेक-शक्ति के बल पर अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर पाते हैं। अधिकतर व्यक्तियों के लिए, विशेषकर प्रारम्भिक अवस्था में एक समेकित कार्यक्रम उपयुक्त रहता है जिसमें ज्ञानयोग की जिज्ञासा के तत्त्व, भावनाओं को निर्मुक्त करने वाला भक्तियोग, कर्मों का क्षय करने वाला कर्मयोग तथा शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हठ योग सम्मिलित हैं। ऐसे कुछ गिने-चुने साधक जिनमें पर्याप्त मानसिक दृढ़ता है और जो ज्ञानमार्ग से अपनी आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ कर सकते हैं, उन्हें भी पहले गहन चिंतन और नैतिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी।

यद्यपि दर्शन और सिद्धान्तों की बात करना बहुत अच्छा लगता है, किन्तु सामान्य मानवीय व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में जीवन की एकता एवं अभिन्नता के प्रति निरंतर सजग रहना सर्वथा भिन्न होता है। ज्ञानयोग का अनुसरण करने वालों को प्रत्येक विचार एवं क्रिया में एकता एवं दिव्यता का दर्शन करना चाहिए। साधना के इस कठिन मार्ग द्वारा बहुत्व से उत्पन्न सभी भ्रम दूर हो जाते हैं। ज्ञानयोगी अपने दैनिक जीवन से भिन्नता एवं वैयक्तिकता के सभी भावों को दूर कर देता है।

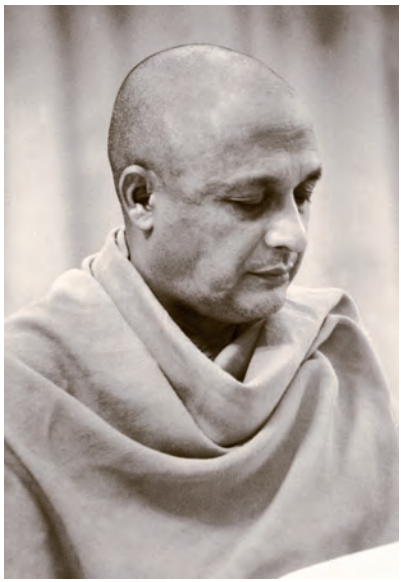

प्रारम्भ में अत्यन्त बौद्धिक व्यक्ति ही ज्ञानयोग की ओर आकर्षित होंगे। इस प्रकार के जिज्ञासुओं में भक्तियोग और कर्मयोग जैसे योग के भावनापूर्ण और भक्तिपूर्ण पक्षों में अरुचि होती है। लेकिन रमण महर्षि जैसे महान् ज्ञानियों ने बल देते हुए कहा है कि यद्यपि ज्ञानयोगी अपने मन के द्वारा आत्म-तत्त्व तक पहुँचता है, किन्तु चरम अनुभूति का

केन्द्र तो हृदय में होता है जहाँ करुणा का व्यापक रूप प्रकट होता है। यह भगवान बुद्ध जैसे ज्ञानियों के जीवन में स्पष्टत: दिखलाई देता है।

ज्ञानयोग में ध्यान के आधार वे प्रश्न हैं जो व्यक्ति को भ्रमों से दूर उसकी वास्तविक प्रकृति की ओर ले जाते हैं–'मैं कौन हूँ?' 'मैं कहाँ से आया हूँ?' 'मेरा उद्देश्य क्या है?' 'मैं कहाँ जा रहा हूँ?' ये प्रश्न व्यक्ति को ज्ञानयोग के अभ्यास की आरे ले जाते हैं।

ज्ञानयोग का अभ्यास

ज्ञानयोग का अभ्यास औपचारिक ध्यान के माध्यम से तो होता ही है, साथ ही दैनिक जीवन की सभी गतिविधियों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं में भी होता है जहाँ मन का विश्लेषणात्मक पक्ष हर घटना पर मनन करता जाता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए आपकी सजगता और निष्ठा जितनी बढ़ती जायेगी, आप पायेंगे कि आपके व्यवहार में, सम्बन्धों में और प्रतिक्रियाओं में उतना ही सकारात्मक परिवर्तन आ रहा है। वह अवस्था शीघ्र ही आ जाती है जब व्यक्ति यह समझने लगता है कि मुक्ति एवं बंधन स्वयं उत्पन्न की गयी स्थितियाँ हैं जो बाह्य नहीं बल्कि आंतरिक सीमाओं के आरोपण का फल हैं। ज्ञानयोग के अन्तर्गत ध्यान जैसे-जैसे चलता रहता है वैसे-वैसे मन शान्त होता जाता है तथा बुद्धि प्रखर होती जाती है।

जब ज्ञानयोग के साधक को सब नाम-रूपों के पीछे छिपी एकमात्र सत्ता की अनुभूति होने लगती है तो उसमें आत्म-विश्वास एवं निष्ठा के साथ स्वतंत्रता और शक्ति का नवीन अनुभव होने लगता है। जीवन की सभी अवस्थाओं और पक्षों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के बाद उसे ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत अपनी और सम्पूर्ण सृष्टि की भूमिका का आभास होने लगता है जिसका वह एक तुच्छ किन्तु अभिन्न अंग है। सृष्टि के मौलिक नियमों के प्रति उसकी सजगता बढ़ने लगती है, उनके कार्यान्वयन के प्रति उसका विश्वास बढ़ता है और वह निरंतर अनेकता में एकता को देखता है। फिर वह सहज ही भयों, पूर्वाग्रहों और भ्रांत धारणाओं से मुक्त हो जाता है।

ध्यान की प्रक्रिया

तर्कपूर्ण मन वाले मेधावी व्यक्ति को विचारों, वाद-विवादों, प्रश्नों और उत्तरों के बीच सम्बन्ध जोड़ने की अपनी प्रवृत्ति का सदुपयोग करना चाहिए। मन को सरलता से स्थिर नहीं किया जा सकता है। इसलिए ऐसे साधक को विचारों के तर्कपूर्ण क्रम में एक-एक कदम आगे बढ़ना चाहिए और अपने मन को कभी विचारों के उस क्रम से हटने नहीं देना चाहिए। मन को इस मार्ग पर दृढ़ रखने से स्थिरता का विकास होगा। जब आप तर्क के सहारे विचारों के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अन्तिम कड़ी तक पहुँच गये हैं और वाद-विवाद का कोई अन्य बिन्दु दृष्टिगत नहीं होता है तो विचारों

की शृंखला की उस अन्तिम कड़ी से जुड़े रहें, मन को वहाँ स्थिर कर दें, और फिर आगे जो भी होता है, उसके लिए तैयार रहें। इस प्रवृत्ति का धीरे-धीरे विकास करते हुए इसे दीर्घ काल तक बनाये रखना चाहिए।

मैं कौन हूँ?

हर सुबह अपने मन में यह प्रश्न स्पष्ट रूप से करें 'मैं कौन हूँ?' और तब अपना उत्तर लिखें। प्रतिदिन आप अपनी चेतना की गहराइयों में अधिक-से-अधिक प्रविष्ट होते जायेंगे। ज्यों-ज्यों आपका अन्वेषण आगे बढ़ता जायेगा आपकी आत्म-सजगता और अंतर्दृष्टि विकसित होती जायेगी। ध्यान की इस सरल प्रक्रिया के चलते हुए आप अपने अन्दर अनेक प्रकार के व्यक्तित्वों या मनोवैज्ञानिक पात्रों के प्रति सजग हो जायेंगे। आप पायेंगे कि ये प्राय: एक-दूसरे के विरोधी होते हैं। कभी एक-के-बाद-एक तो कभी साथ-साथ ये आप पर हावी होते हैं और अनजाने ही आपको अपने जीवन में इन सारे पात्रों की भूमिका का निर्वहन करने को प्रवृत्त करते हैं। आपको अनुभव होगा कि आप इन सबमें से कोई भी पात्र बन सकते हैं। ज्यों-ज्यों आपका अभ्यास आगे बढ़ता जायेगा, आप इन पात्रों की भूमिकाओं के अर्थ को समझने लगेंगे और धीरे-धीरे इन सब के प्रति निरासक्त होते जायेंगे। आप जब यह समझने लगेंगे कि आपके विचार, भाव, संवेदनाएँ, इच्छाएँ और भूमिकाएँ स्थिर नहीं हैं बल्कि निरंतर परिवर्तन की स्थिति में हैं तो आप धीरे-धीरे अपने सम्पूर्ण व्यकितत्व में ऐक्य और सामंजस्य स्थापित करने लगेंगे। इन सब को पहचानते हुए और स्वयं को इनसे असंबद्ध रखते हुए आप उस वास्तविक आत्म-तत्त्व का अनुभव करने लगेंगे जो सारे परिवर्तनों में निहित है किन्तु जो स्वयं अपरिवर्तित रहता है, क्योंकि वह सारे रूपान्तरों से परे है।

इस ध्यान के अभ्यास के क्रम में आपकी सजगता के विस्तार और आपके व्यक्तित्व में उत्पन्न हुई एकरसता के द्वारा आपका अद्‌भुत विकास होगा। इस प्रक्रिया के क्रम में आत्म-रहस्योद्‌घाटन के साथ कुछ संकटपूर्ण स्थितियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं और कुछ विशेष समस्यायें भी उभरेंगी। नियमित ध्यान द्वारा इनका प्रत्यक्ष सामना किया जाना चाहिए, इन्हें समझा और परखा जाना चाहिए। अभ्यास का जारी रहना महत्त्वपूर्ण है। आपमें कितने भी नकारात्मक भाव उत्पन्न क्यों न हों, अपने ध्यान के अभ्यास को एक दिन के लिए भी छोड़ें नहीं। यदि आप दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते जाते हैं तो हर बार ऐसी संकटपूर्ण स्थिति से आप अधिक ज्ञान और समझ के साथ उबरेंगे।

ऐसा कहा जाता है कि सच्चे ज्ञानी को 'मैं कौन हूँ?' का प्रश्न केवल एक बार पूछने की जरूरत है। उससे जो प्रश्नात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न होती है वह उसे सीधे विशुद्ध आत्मानुभूति की ओर प्रेरित करती है। उस अवस्था में सतत् चेतन आत्मानुभूति के साथ वह प्रश्न भी विलुप्त हो जाता है।

सरल ध्यान के निर्देश

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें। अपने शरीर को शिथिल कर लें और आँखें बंद कर लें।

आप जहाँ बैठे हुए हैं उस वातावरण के प्रति सजग हो जायें। पूरे कमरे, जमीन, छत, खिड़की, दरवाजे की सजगता।

शरीर के उस भाग की सजगता जो जमीन के सम्पर्क में है। योग निद्रा की तरह अपनी सजगता को पूरे शरीर में घुमायें।

शरीर को एक इकाई मानते हुए सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जायें।

अब स्वयं से पूछें– 'क्या मैं यह शरीर हूँ?' 'क्या मैं इस शरीर का द्रष्टा हूँ?' 'अथवा क्या मैं शरीर और द्रष्टा, दोनों हूँ?'

अपनी सजगता को स्वाभाविक श्वास पर ले जायें। प्रत्येक श्वास पर ध्यान दें। 'मैं अपने पूरक के प्रति सजग हूँ; मैं अपने रेचक के प्रति सजग हूँ।'

कुछ देर तक यह अभ्यास जारी रखें।

अब अपने मन की गतिविधियों के प्रति सजग हो जायें। पाँच-दस मिनटों तक अपने विचारों, भावनाओं, अवधारणाओं, दृश्यों, स्मृतियों इत्यादि के साक्षी बने रहें।

स्वयं से पूछें–'मैं विचार हूँ या भाव?' 'मैं मन हूँ या मन का द्रष्टा?' 'मैं क्या हूँ?'

– 'ईश्वर दर्शन' से उद्धृत

ज्ञानयोग की साधना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भारतीय परम्परा में जिन पाँच योगों का मुख्य रूप से उल्लेख किया गया है, वे हैं हठयोग–शरीर के लिए, राजयोग–मन के लिए, भक्तियोग–भावनाओं के लिए, कर्मयोग–कर्मों को परिष्कृत करने के लिए और पाँचवा है ज्ञानयोग–बुद्धि को परिवर्तित करने के लिए। पहले चार योगों के बारे में तो बहुत कुछ कहा गया, लिखा गया और सुना गया है, लेकिन जब ज्ञानयोग की चर्चा होती है तब व्यक्ति ब्रह्म, माया, जीव आदि के बारे में सोचने लगता है और ज्ञानयोग एक दार्शनिक प्रक्रिया का रूप ले लेती है। इसका स्वरूप व्यावहारिक है, यह एक साधना है और इस साधना की परिणति बुद्धि की परिष्कृति में होती है। साधना की उपलब्धि तब होती है जब बुद्धि पदार्थ से हटकर आत्मा से, भौतिकता से हटकर अध्यात्म से जुड़ती है, जब बुद्धि अपने तामसिक स्वरूप को त्याग कर सात्त्विक स्वरूप को ग्रहण करती है।

वृत्तियों का स्वभाव

जीवन में सामान्य रूप से हमारी बुद्धि विषयाकार होती है और हमें सुख-दुःख का अनुभव दिलाती है। आदमी उसी में ही मृत्यु तक घिरा रहता है। लेकिन बुद्धि की एक और अवस्था होती है, जिसे ब्रह्माकार कहते हैं। ज्ञान योग का लक्ष्य ब्रह्माकार बुद्धि को, ब्राह्मी वृत्ति को प्राप्त करना है। वृत्ति का एक अर्थ होता है भँवर। भवँर में ऐसी शक्ति रहती है कि वह अपने आस-पास की चीजों को खींचकर उनकी स्थिरता को समाप्त कर देती है। उसी प्रकार वृत्ति भी होती है।

आप किसी वस्तु को देखते हो तो उसके प्रति चाह होने लगती है। बाजार में सब्जी खरीदने के लिए घूम रहे हैं, लेकिन वहाँ पर आपको सुन्दर आम दिखलाई देते हैं। वृत्ति उत्पन्न होती है। निकले थे सब्जी खरीदने के लिए, लेकिन उसके साथ दो-चार सुन्दर आम भी खरीद लेते हैं। यह वृत्ति का खेल है। बाजार घूमने के लिए चले थे, लेकिन शो-रूम में एक अच्छी मोटर-साईकिल दिखलाई दी। वृत्ति ने आपको उस मोटर साईकिल की पहचान दिलाई और वह जागृत हो गई। अब आप घर आकर सोचते हो कि वह आवश्यक है, अपना बैंक-बेलेन्स देखते हो कि कितना धन है, फिर देखते हो कि उसका दाम कितना है। अगर पर्याप्त धन है तो अगले दिन जाकर मोटर साईकिल खरीद लेते हो। यह वृत्ति की क्रिया है।

वृत्ति का काम होता है आपको विषय-वस्तु से जोड़ना, विषय-वस्तु की पहचान दिलाना और उसके प्रति राग-द्वेष को उत्पन्न करना। जब भी आदमी अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ना चाहता है तब विषयाकार वृत्ति उसे बार-बार वापिस खींचकर लाती

है। अगर आप ईश्वर का चिंतन भी करना चाहें तो भी विषयाकार वृत्ति आपको पुन: संसार में खींचकर लाती है। फिर से आप अपने मन को, बुद्धि को ईश्वर आराधना में केन्द्रित करने का प्रयास करते हो। दो क्षण के बाद जब आराधना वृत्ति, एकाग्रता वृत्ति अन्दर में प्रकट होती है, तब विषयाकार वृत्ति पुन: उस मानसिक अवस्था में व्यवधान उत्पन्न करती है। इस तरह हम अपने मन के द्वारा वृत्तियों के खेल का ही अनुभव करते हैं।

ज्ञानयोग का प्रयोजन

ज्ञानयोग में कहा गया कि जब संसार से तुम्हारी वृत्ति जुड़ जाती है तब तुम बन्धन, क्लेश, संघर्ष, अशान्ति और सुख-दु:ख का अनुभव करते हो। ये सांसारिक अनुभव हैं, लेकिन जब तुम अपने मन को संसार के विषयों से खींचकर एक बिंदु पर केन्द्रित करते हो तब उस समय विषयाकार वृत्ति के बन्धनों के कट जाने से मन में शान्ति और संतोष की अनुभूति होती है। वही मानसिक शान्ति और संतोष तुम्हें आध्यात्मिक अनुभूति की ओर ले चलते हैं। अपने आपको एक आध्यात्मिक अनुभूति में स्थित करना ही ज्ञानयोग का प्रयोजन है।

आध्यात्मिक वृत्ति में हम अपने आपको किस प्रकार स्थापित करें और हमारा चिंतन किस प्रकार का होना चाहिए, इसका संकेत हमें वेदों में दिया गया है। हर वेद में एक वाक्य मुख्य रूप से आता है और उसी को महावाक्य कहते हैं। ऋषि, मुनि, मनीषी आदि उसी महावाक्य से अपने सम्बन्ध को जोड़ते हैं। वेदों के ये महावाक्य बुद्धि की दृष्टि को भौतिकता से हटाकर परमात्म-तत्त्व की ओर ले जाते हैं। ये महावाक्य क्या हैं? पहला महावाक्य है, 'प्रज्ञानं ब्रह्म'। इसे समझाने से पहले एक बात और बता देता हूँ।

भारतीय दर्शन में जो अनादि, अनन्त और अव्यक्त तत्त्व है, उसे ब्रह्म कहा गया है। यही अनादि, अनन्त, ब्रह्म तत्त्व जब माया से जुड़ जाता है, तब ईश्वर कहलाता है। माया का क्या काम है? ब्रह्म की जो अव्यक्त स्थिति है, उसे व्यक्त कर देना। जो अनन्त है उसका आदि और अन्त निश्चित कर देना। इसलिए जब माया ब्रह्म के साथ जुड़ती है तब ईश्वर नाम से उस तत्त्व को जानने लगते हैं। माया के प्रभाव से ईश्वर अनेक रूपों में दिखलाई देता है। हर रूप की एक पहचान होती है, हर रूप का एक नाम, गुण होता है। अगर हम लोग क्रमानुसार देखें तो निराकार तत्त्व है ब्रह्म और निराकार तत्त्व माया के साथ ईश्वर हो जाता है। जब हम माया के अधीन हो जाते हैं तब जीव कहलाते हैं।

ईश्वर और माया दोनों बराबर के हैं, लेकिन जब माया प्रबल हो जाती है, तब ईश्वरत्व की छवि धूमिल हो जाती है और हम जीव कहलाते हैं। विषयाकार वृत्ति हम जीवों की है। हम माया के अधीन हैं और माया के अधीन होकर नाम, रूप और गुण

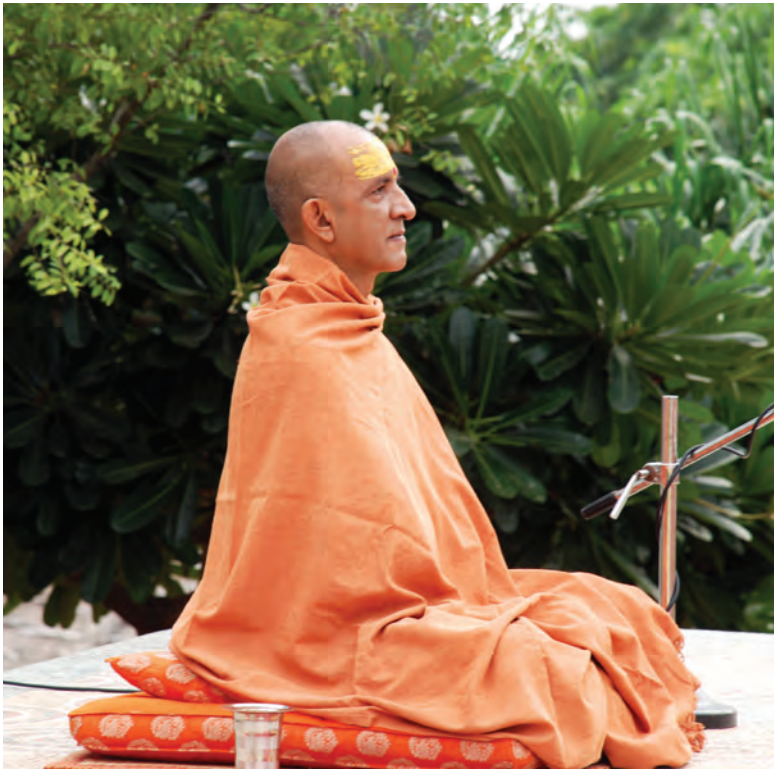

सभी को देखते हैं। हमारा सम्बन्ध उसी से स्थापित होता है। जिसका नाम, रूप, गुण न हो उससे हम क्या सम्बन्ध स्थापित करें? संसार में जितनी भी अनुभवगम्य चीजें हैं, सभी में नाम, रूप और गुण की स्थिति रहती है। माया के कारण जीव अपने आपको संसार से जोड़ता है, अपने आपको माया के अधीन देखता है।

ब्रह्मत्व की ओर यात्रा

अब यहाँ से हमारी यात्रा ब्रह्मत्व अर्थात् अनादि, अनन्त, अचिन्त्य, अव्यक्त तत्त्व की ओर शुरू होती है। यह व्यक्ति के अपने प्रयास पर निर्भर करता है कि उसे इस तत्त्व का अनुभव होगा या नहीं। आप मुंगेर से पटना की यात्रा करते हैं। अगर यात्रा पूरी करोगे तो पटना पहुँच जाओगे और अगर यात्रा को बीच में रोक दोगे तो किसी गाँव में रुक जाओगे। उसी प्रकार जीव भी ब्रह्मत्व को प्राप्त करने के लिए यात्रा शुरू करता है, लेकिन इस यात्रा में अपने आपको कुछ साधनों से सुसज्जित करना आवश्यक है। आखिर आप कहीं यात्रा करोगे तो अपना सामान बाँधोगे या नहीं? उसी प्रकार यहाँ भी इस यात्रा के लिए हमें कुछ तैयारी करनी पड़ती है।

शास्त्रों में बतलाया गया है कि हमें यह तैयारी साधन-चतुष्टय के रूप में करनी है। साधन-चतुष्टय का मतलब चार प्रकार की साधनाओं को सिद्ध करना, चार प्रकार के प्रयासों को करने का संकल्प लेना। इसमें पहला है, विवेक; दूसरा है वैराग्य; तीसरा है षड्-सम्पत्ति अर्थात् छः प्रकार के गुणों से अपने आपको युक्त करना और चौथा है मुमुक्षुत्व, जिसका मतलब होता है कि बन्धनों से मुक्त होने की प्रबल चाह होनी चाहिये। ये साधन-चतुष्टय हमें इस ऊर्ध्वगामी यात्रा के लिए तैयार करते हैं। केवल तैयार ही नहीं करते, बल्कि ज्ञानयोग में हम जिस बुद्धि का प्रयोग करने वाले हैं, उस बुद्धि को संभालते हैं, उस बुद्धि को विषयों से जुड़ने से रोकते हैं। आपको विषयों का ज्ञान दिलाते हैं कि ये आपके लिए आवश्यक हैं या नहीं।

विवेक एक ऐसी क्षमता है बुद्धि की, जिसके द्वारा हम सही और गलत, दोनों के भेद को जान सकते हैं। दोनों के भेद को जानने के पश्चात् फिर जब हम निर्णय लेते हैं कि इससे जुड़ेंगे और इससे नहीं, तो वह वैराग्य की स्थिति है। बिना विवेक के वैराग्य संभव नहीं होता। वैराग्य विवेक की परिणति है। विवेक को प्राप्त करने के बाद वैराग्य स्वतः आता है। जब जान लोगे कि उचित और अनुचित क्या है तब अनुचित का त्याग स्वतः होगा और उचित से तुम अपने आपको जोड़ोगे। वह वैराग्य की स्थिति कहलाती है।

मुमुक्षुत्व की भावना

विवेक, वैराग्य और षड्-सम्पत्ति में ऊर्जा लाने के लिए मुमुक्षुत्व का होना आवश्यक है। 'मैं अपने आपको सांसारिक बन्धनों से मुक्त करना चाहता हूँ और शाश्वत सुख एवं आनन्द प्राप्त करना चाहता हूँ'—यह मुमुक्षुत्व की भावना है। एक बार रामकृष्ण परमहंस के पास एक भक्त पहुँचा। उसने कहा कि मुझे देवी माँ का दर्शन करना है, आप तो उनसे रोज बात करते हैं, आप देवी माँ से कह दीजिये कि तुम जाकर अपना दर्शन दो। रामकृष्ण चुप बैठे रहे। वह आदमी उनको परेशान करता गया कि मुझे माँ का दर्शन करना है, आप माँ से कहिये कि मुझे आकर दर्शन दें। रामकृष्ण सुनते रहे और अपना काम और पूजा करते रहे। बाद में वे उठे और अपना तौलिया कंधे पर डालकर गंगा किनारे नहाने के लिए चले। व्यक्ति को उत्तर नहीं मिला था, तो वह भी रामकृष्ण के पीछे बड़बड़ाते हुए चल पड़ा कि पता नहीं, आप मेरी बात समझे हैं या नहीं, मुझे माँ का दर्शन करना है।

रामकृष्ण चलते रहे और नदी में स्नान के लिए प्रवेश कर गये। वह व्यक्ति किनारे बैठकर उनसे बोलता रहा कि आप भूलियेगा नहीं, माँ से जरूर कहियेगा। रामकृष्ण ने कहा कि संध्या का समय है, तुम भी आकर गंगाजी में स्नान कर लो। वह आदमी खुश हो गया कि गुरुजी के साथ स्नान करने का अवसर मिला है। उसने भी अपनी धोती बांधी और नदी में कूद गया और रामकृष्ण के समीप पहुँच गया। रामकृष्ण जी

ने कहा कि तुम डुबकी लगाओ। जैसे ही आदमी ने नाक पकड़ कर डुबकी लगाई, वैसे ही रामकृष्ण उसके कंधों पर सवार हो गये और उसे नीच पानी में ठेल दिया।

वह बेचारा पानी के भीतर श्वास के लिए तड़पने लगा। जब उससे और सहन नहीं हुआ, तब उसने अपने हाथों को जोर से उछाला और रामकृष्णजी को दूर फेंक दिया। वह पानी से आग-बबूला होकर निकला और क्रोध में कहा, 'मुझे मारने का प्रयास कर रहे थे!' रामकृष्ण बोले, ' पहले यह बताओ कि जब तुम पानी के भीतर थे तो क्या महसूस कर रहे थे?' आदमी ने कहा, 'क्या महसूस करूँगा? मैं बाहर निकलने के लिए तड़प रहा था। उस तड़पने में पता नहीं कहाँ से शक्ति आ गई कि मैंने आपको भी अपने कंधों से फेंक दिया।' तब रामकृष्ण कहते हैं, 'बेटा, जब तुम्हारे मन में, बुद्धि में, भावना में उस प्रकार की तड़प होगी कि तुम माँ से मिलना चाहते हो तो तुम्हें कहने की आवश्यकता नहीं होगी, माँ खुद तुम्हारे पास आयेगी।'

इसी तरह जब आदमी संसार के बंधन में घुटन महसूस करने लगता है और सोचता है कि वह अब श्वास नहीं ले पायेगा, तब संसार से मुक्त होने का जो प्रयास करता है वह मुमुक्षुत्व की स्थिति है। मैं अपने आपको बंधनों से मुक्त करना चाहता हूँ, अपनी वासनाओं, बुराइयों, तामसिकता को कम करना चाहता हूँ—मन में यह जो कभी-कभी छोटा-सा विचार आता है वही आपके मोक्ष का, मुक्ति का कारण बनता है। इसके बिना आगे बढ़ना संभव नहीं है, क्योंकि जब तक मुमुक्षुत्व प्रबल नहीं होगा आप ठीक से प्रयास भी नहीं करोगे।

मुमुक्षुत्व से पहले जो प्रयास करते हो वह अपने कौतूहल को शान्त करने के लिए करते हो। 'स्वामीजी ऐसा कहते हैं। चलो! हम आजमाकर देखें।' हममें मुमुक्षुत्व की भावना नहीं है, केवल कौतूहल की भावना है और अगर आदमी कौतूहल की भावना से प्रेरित होकर कुछ प्रयास कर भी लेगा तो उस प्रयास में सिद्धि नहीं मिलेगी क्योंकि उस प्रयास को वह कभी भी अंत तक नहीं ले जायेगा। 'ठीक है, मैंने आज इतना कर लिया, अब आगे देखेंगे कि फिर कब होता है'—यह कौतूहल का विचार है। जबकि मुमुक्षुत्व का विचार है—'आज एक कदम चलूँगा, कल एक कदम और चलने का प्रयास करूँगा, परसों तीसरा कदम लूँगा, रोज एक-एक कदम लेता जाऊँगा और आगे बढ़ता जाऊँगा।'

इसके बाद विवेक को प्राप्त करना सहज हो जाता है। लोग पहले प्रयास करते हैं विवेक के लिए, फिर प्रयास करते हैं वैराग्य के लिए। उन्हें कठिनाई होती है क्योंकि भावना तो है ही नहीं। जब भावना ही नहीं है तो तुम कितना ही प्रयास करो, मनोरंजन हो जायेगा, लेकिन आत्मोन्नति नहीं होगी। इसलिए साधन चतुष्टय में पहले मुमुक्षुत्व, उसके पश्चात् विवेक, उसके पश्चात् वैराग्य और उसके पश्चात् आती है षड्-सम्पत्ति। लेकिन इसके पूर्व ध्यान की उन तीन अवस्थाओं को बतला रहा हूँ जिनका अभ्यास और सिद्धि भी जरूरी है।

साक्षी भाव का समावेश

अपने आपको विषय-वस्तुओं से दूर करने के बाद, वैराग्य स्थिति को प्राप्त करने के पश्चात् ध्यान आरंभ होता है। ध्यान के प्रथम चरण में इन्द्रिय-संयम की प्राप्ति आती है। जब इन्द्रिय- संयम प्राप्त हो जाता है तब ध्यान के दूसरे चरण में मन-संयम का प्रयास होता है। मन-संयम के पश्चात् अपनी बुद्धि को साक्षी भाव से जोड़ना ध्यान की तीसरी विधि है।

जैसे खिड़की पर बैठकर सड़क पर चलते सभी तमाशों को देख सकते हैं, वैसे ही जब बुद्धि भी चित्त, अहंकार और मन से अलग होकर इनके खेलों को देखती है, तब बुद्धि में द्रष्टा-भाव या साक्षी-भाव उत्पन्न होता है। मन तो खेलता है, वह द्रष्टा नहीं हो सकता, लेकिन बुद्धि खेलती नहीं है, इसलिए वह द्रष्टा हो सकती है। मन एक बच्चा है और बुद्धि एक प्रौढ़ व्यक्ति की भाँति स्थिर होकर मन-रूपी बच्चे के खेल को देखती है। जब देखती है कि बच्चा गड़बड़ कर रहा है तब उसे रोकती है कि वैसा मत करो, तुम्हें चोट लगेगी। जब बुद्धि में साक्षी-भाव आता है तब उस साक्षी-भाव के द्वारा विवेक और वैराग्य की स्थिति और भी प्रबल बनती है।

ध्यान के इस तीसरे आयाम, द्रष्टा-भाव को प्राप्त करने के पश्चात् षड्-सम्पत्ति का काम शुरू होता है। अब तक हम छः अभ्यास तो कर चुके हैं—मुमुक्षुत्व, विवेक, वैराग्य, इन्द्रिय-संयम, मन-संयम और साक्षी-भाव। इन छः अभ्यासों से इस मिजाज के भीतर कुछ परिवर्तन तो हुआ है। मन, मस्तिष्क, बुद्धि, चित्त, अहंकार के भीतर इन साधनाओं का थोड़ा असर तो आया है और इन अवस्थाओं को षड्-सम्पत्ति द्वारा स्थिर रखने का प्रयास होता है।

षड्-सम्पत्ति

षड्-सम्पत्ति में पहला है, शम, जिसका अर्थ होता है मानसिक शांति का अनुभव करना। इन्द्रियों का राजा मन है। अगर तुम मन को नियन्त्रित कर लोगे तो इन्द्रियाँ भी स्वत: नियंत्रण में आ जाती हैं। इन्द्रियाँ सैनिक हैं और मन कमाण्डर। अगर तुम कमाण्डर को पटा लेते हो तो सैनिक तुम्हारे विरोध में काम नहीं करेंगे, लेकिन अगर तुम कमाण्डर को नहीं पटाओगे, वह तुम्हारा शत्रु ही रहेगा, तो कमाण्डर और सैनिक दोनों तुमपर हमला करेंगे। मन को शांत रखना शम कहलाता है। पहले मन-संयम द्वारा जिस शांत मानसिक अवस्था को प्राप्त किया है, उसे कायम रखे रहो।

उसके बाद दूसरा है, दम—इन्द्रियों का दमन, इन्द्रिय-निग्रह। इसे भी हमने पूर्व में प्राप्त किया है, और यहाँ पर उस स्वभाव को कायम रखना है कि हमारी इन्द्रियाँ आगे-पीछे नहीं भागें और हमें चंचल नहीं बनायें, बल्कि स्थिर रहें।

उसके बाद तीसरा है, उपरति, जिसका अर्थ है आत्म-संतुष्टि। जब जीवन में कोई वासना नहीं रहती और वासनाओं को हम विवेक और वैराग्य के तराजू में तौल लेते हैं, तब जाकर संतोष का जो भाव भीतर में उत्पन्न होता है वह है उपरति। उस आत्म-संतुष्टि के भाव को कायम रखना है, संतोष की अवस्था को बनाये रखना है।

उसके पश्चात् है, तितिक्षा जिसका मतलब धैर्य होता है। अब आपने अपने मन की अवस्थाओं पर संयम को तो प्राप्त किया, लेकिन अभी भी आप संसार के कार्यों में संलग्न हैं, घर, परिवार, व्यवसाय, यात्राएँ, सम्बन्ध हैं, उनका तो त्याग नहीं हो रहा है। उनके साथ तो सम्बन्ध रहेगा ही और वहीं पर हमें अपना जीवन बिताना है। मन की इन अवस्थाओं को प्राप्त करने के बाद भी हमारा मन संसार से प्रभावित होता रहेगा। उस समय तितिक्षा आवश्यक है। अगर दु:ख होता है जो बाहर से आ रहा है, तो उस समय आपके भीतर धैर्य का होना आवश्यक है। कठिनाई होगी, संघर्ष होगा, धैर्य का होना आवश्यक है। जीवन के सभी कर्मों को करते हुए भी विचलित नहीं होना, बल्कि धैर्य को बनाये रखना, यह तितिक्षा है।

धैर्य के बाद पाँचवी चीज है श्रद्धा। श्रद्धा एक ऐसी शक्ति है जो आपको अपने आराध्य, अपनी अन्तरात्मा के साथ जोड़ती है। श्रद्धा कहाँ होनी चाहिए? तीन चीजों में। एक तो ईश्वर में, दूसरी गुरु में और तीसरी शास्त्रों में। ये श्रद्धा के तीन क्षेत्र होते हैं और तुम इन तीन

क्षेत्रों में से कहीं पर भी अपनी श्रद्धा को टिका दो। एक बार जब तुम्हारी श्रद्धा इनमें टिक जाती है तब फिर जीवन अपने आप व्यवस्थित और अनुशासित होने लगता है। जीवन को व्यवस्थित करने के लिए श्रद्धा-विश्वास आवश्यक है। श्रद्धा तथा विश्वास के बिना अन्तरात्मा की अनुभूति किसी के लिए भी संभव नहीं है चाहे वह कितना ही बड़ा तपस्वी, योगी अथवा सिद्ध ही क्यों न हो। इसलिए श्रद्धा को भी कायम रखना।

अंत में समाधान है। सामान्य रूप से समाधान का अर्थ होता है किसी समस्या का हल, लेकिन आदिशंकराचार्य समाधान को समझाते हुए कहते हैं कि तुम अपने मन को एक बिंदु में, चिंतन में, मंत्र में या प्रतीक में टिकाते हो और तुम्हारा मन पूर्णरूपेण वहाँ पर केन्द्रित हो जाता है। लेकिन कुछ समय बाद परिस्थितिवश मन उस ध्यान के केन्द्र से हट जाता है और नये विचारों में भ्रमण करने लगता है। फिर जब मन देखता है कि यहाँ पर भ्रमण करने से अब कोई फायदा नहीं, जब यह सजगता आ जाती है कि मैं जो पहले कर रहा था, उसे छोड़कर कहीं और भटक रहा हूँ तब मन लौट आता है और पुन: उस चिंतन में संलग्न हो जाता है। इस अवस्था को समाधान कहते हैं। भटकने के पश्चात मन का पुन: अपने केन्द्र में स्थित हो जाना समाधान की स्थिति है।

षड्-सम्पत्ति, अर्थात् इन छ: अवस्थाओं को धारण करना और उसके लिए प्रयत्न करते रहना, यह ध्यान की तीन अवस्थाओं के बाद संभव हो पाता है। जैसे कहा जाए कि ध्यान तक हमने भवन बना दिया और षड्-सम्पत्ति द्वारा अब भवन की रोज साफ-सफाई होती रहे। भवन-निर्माण की प्रक्रिया मुमुक्षुत्व, विवेक, वैराग्य, इन्द्रिय-संयम, मन-संयम और द्रष्टा भाव के जागरण तक हो रही है। भवन निर्माण के बाद भवन को साफ रखना, यह षड्-सम्पदा का काम है। जिस अवस्था को आपने प्राप्त किया है उस अवस्था को बनाये रखें और जब यह स्थिति जीवन में स्थिर हो जाती है तब वेदोक्त ज्ञानयोग की साधना आरम्भ होती है।

ज्ञानयोग की उच्च अवस्था

इस उच्च साधना में प्रथम वाक्य है 'प्रज्ञानं ब्रह्म'। जो ब्रह्म इस पूरे संसार में व्याप्त है और जिसके हम अभिन्न अंग हैं, उस ब्रह्म का स्वरूप चेतना और ज्ञान का है। पूरे संसार में उसी रूप का अनुभव करना है। आप भी चेतना और ज्ञान के रूप हैं और हम भी। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी भी चेतना और ज्ञान के रूप हैं। किसी में वह चेतना और ज्ञान एक प्रतिशत जागृत है तो किसी में नब्बे प्रतिशत, लेकिन सभी उसी तत्त्व के रूप हैं। यह सम्पूर्ण सृष्टि ही चेतना और ज्ञान का स्वरूप है।

इस प्रकार से ईश्वर की अनुभूति को हम इस संसार में अपने चारों तरफ पाते हैं और उससे अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। मान लीजिए कि आपके मन में किसी के प्रति यह विचार आता है कि वह आदमी बदमाश है। वहाँ पर फिर चिंतन होगा कि ठीक है, मेरे भौतिक मन ने उस आदमी को एक बदमाश के रूप में देखा, लेकिन 'प्रज्ञानं

ब्रह्म' के हिसाब से उस बदमाश आदमी के भीतर भी वही चेतन और ज्ञान तत्त्व है, जो मुझमें है। हो सकता है कि उस बदमाश आदमी के भीतर वह चेतन तत्त्व दस प्रतिशत जागृत हो और मेरे भीतर अस्सी प्रतिशत, लेकिन दोनों में यह समानता है। जब ऐसा भाव आयेगा तो बदमाश को हम बदमाश के रूप में नहीं, बल्कि अपने जैसे एक मनुष्य के रूप में देखना आरम्भ करेंगे। बदमाशी उसका एक स्वभाव, उसकी एक अभिव्यक्ति हो जायेगी, लेकिन वह व्यक्ति एक चेतन तत्त्व के रूप में आपके द्वारा पहचाना जायेगा। यह 'प्रज्ञानं ब्रह्म' की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

सब चीजों को केवल तामसिक आवरण, तामसिक चश्मे से मत देखो। एक बार उस चश्मे को हटाकर सात्त्विक चश्मा लगाकर भी देखो। यही 'प्रज्ञानं ब्रह्म' है। 'जहाँ कहीं देखा प्रभु जी की माया, सबके दिल में है प्रभु जी की छाया'—जब तुम प्रभु की छाया को हर प्राणी में देखने लगते हो तब वह 'प्रज्ञानं ब्रह्म' की अवस्था है और जब तुम उसी छाया को अपने भीतर अनुभव करने लगते हो कि जब सभी वही हैं तो मैं कौन हूँ? मैं भी वही हूँ—'अहं ब्रह्मास्मि', तब वह ज्ञानयोग की दूसरी अवस्था है।

जब मैं अपने आप में वह चीज अनुभव करने लगता हूँ और दूसरा व्यक्ति आकर पूछता है कि गुरुजी, क्या अनुभव कर रहे हो, तब उस अवस्था में मैं कहता हूँ—'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' अर्थात् तुम भी वही हो। यह हुआ उपदेश वाक्य। उसके बाद चौथा वाक्य है, 'अयमात्मा ब्रह्म'। अयम् का मतलब होता है, 'यह', आत्मा और ब्रह्म का मतलब आप जानते ही हो। यह होता है अनुभव वाक्य। जब कहा जाता है कि तुम वही अनादि, अनन्त ब्रह्म हो, माया से परे हो, तब फिर चेला उस पर चिंतन करता है—मैं माया के अधीन नहीं हूँ, माया से मुक्त हूँ, मैं भी वही हूँ जो गुरुजी हैं।

फिर यहाँ पर चेले महाराज की परीक्षा होती है। चेला सोचने लगता है कि मैं भी गुरु बन गया, गुरु तुल्य हो गया। तब गुरु कहते हैं कि चलो बेटा, बाजार घूमने चलते हैं। गुरुजी चेले के साथ बाजार पहुँचते हैं। एक दारू की दुकान पर रुकते हैं, एक बोतल खरीदते हैं और पूरी पी लेते हैं। चेला सोचता है कि गुरुजी ने बोतल पी है, इसमें कोई दोष नहीं है। मैं भी तो गुरु सम हो गया हूँ, मैं भी पी लेता हूँ। चेला भी बोतल खरीदकर गटा-गट पी लेता है।

उसके बाद गुरुजी लाल बत्ती क्षेत्र में जाते हैं। नाच-गाना चल रहा है। वे नाच-गाना देखने बैठ जाते हैं। चेला बाहर खड़ा होकर सोचता है कि अब तो मैं भी गुरु-तुल्य हो गया हूँ। मैं भी अन्दर चलकर नाच-गाना देखता हूँ। वह भी अन्दर चला जाता है। गुरुजी के साथ मजा लेता है। उसके बाद गुरुजी बाहर निकलकर काँच बनाने के कारखाने पर जाते हैं और वहाँ पिघले काँच की एक बोतल लेकर उसे भी गटा-गट पी जाते हैं। चेला यह देखकर कहता है कि यह काम केवल गुरु ही कर सकते हैं!

वहाँ पर चेला *तत्त्वमसि* भूल जाता है। वह अपने आपको फिर से लघु रूप में देखने लगता है। तब गुरु उसे कहते हैं कि बेटा, *तत्त्वमसि,* तुम वही हो, लेकिन

तुम अपनी तुलना दूसरों से करने लगे जो तुम्हारे पतन का कारण बना। फिर चेला कहता है कि अच्छा गुरुजी, समझ गया कि सभी कुछ उसी ईश्वर का रूप है। यह आत्मा भी वही ब्रह्म है, सभी चीजें उस आत्मतत्त्व से, ब्रह्मतत्त्व से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार जीवन में ज्ञानयोग का विकास होता है।

अंत में क्या होता है? परमात्मा और जीवन का जो वास्तविक स्वरूप है, उसे मनुष्य जान लेता है। यहाँ पर परमात्मा और जीवन का वास्तविक स्वरूप एक ही कहा गया है। परमात्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है? सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्। जीवन का वास्तविक रूप भी सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् ही है। इस प्रकार बुद्धि के परिवर्तन से मनुष्य अपने आपको सत्य में स्थापित करता है, मंगलकारी कर्मों में प्रवृत्त होता है और जीवन के सौन्दर्य की वृद्धि करता है। जब सत्यं-शिवं-सुन्दरम् का पूर्ण ज्ञान होता है तब मनुष्य की ज्ञानयोग की यात्रा समाप्त हो जाती है।

–15 मई 2011, योगदृष्टि सत्संग शृंखला, गंगा दर्शन

दर्पण

दोपहर का समय था। मनीषी सुकरात अपने एकान्त कक्ष में बैठकर दर्पण देख रहे थे। तभी उनका एक प्रिय शिष्य कक्ष में घुस आया। गुरुजी को शीशे में चेहरा निहारते हुए देखकर शिष्य मुस्कुराने लगा।

शिष्य के मुस्कुराने का कारण समझने में बुद्धिमान् सुकरात को देर न लगी। शांत स्वर में बोले, 'वत्स, तुम शायद यही सोचकर मुस्कुरा रहे हो कि मुझ जैसा कुरूप व्यक्ति दर्पण में रूप का कौन-सा तत्त्व ढूँढ रहा है– क्यों?'

चोरी पकड़ी जाने से शिष्य का सिर शर्म से झुक गया। उसने भर्रायी आवाज में निवेदन किया, 'अपराध क्षमा करें, गुरुदेव!'

तत्त्वज्ञानी सुकरात मुस्कुराकर अपने शिष्य की पीठ थपथपाने लगे। स्नेहित स्वर में बोले, 'बेटा, अपनी कुरूपता की चेतना ही मुझे सतर्क रखती है। कभी अगर वह मंद पड़ने लगती है, तो झट से मैं शीशे में अपना कुरूप चेहरा देख लिया करता हूँ।'

शिष्य ने पूछा, 'कुरूपता की चेतना तो मनुष्य में हीन भावना उत्पन्न करती है न?'

सुकरात बोले, 'हर मनुष्य कमजोरियों का पुतला होता है। मैं भी उनसे ऊपर नहीं हूँ। लेकिन अन्य लोगों से मैं थोड़ा अलग इसलिए हूँ कि मैं अपनी असुंदरता का रोना नहीं रोता, बल्कि हमेशा कोशिश करता हूँ कि सुंदर-से-सुंदर कार्य करूँ ताकि मेरी असुंदरता छुप जाए।'

शिष्य अपने गुरुजी को एकटक निहारता रहा। उस समय उसे तत्त्वदर्शी सुकरात असुंदरता के बावजूद संसार के सर्वाधिक सुंदर व्यक्ति लगे!

चार विद्वान्

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

एक बार चार प्रकाण्ड विद्वान् किसी गाँव में एक दिन के लिए ठहरे। उनमें से एक वैद्य था, दूसरा ज्योतिषी, तीसरा संगीतज्ञ और चौथा तर्कशास्त्री। चारों अपने-अपने क्षेत्र में निष्णात विद्वान् थे, लेकिन जीवन के व्यावहारिक अनुभवों से पूरी तरह अनभिज्ञ और अनजान। गाँव पहुँचने पर चारों ने भोजन बनाने का निर्णय किया और वे अलग-अलग सामग्रियों के लिए निकल पड़े।

वैद्य सब्जियाँ खरीदने बाजार पहुँचा। शाक-सब्जियों के बारे में उसे जो गहन आयुवेर्दिक जानकारी थी, उस दृष्टिकोण से हर सब्जी में उसे कोई-न-कोई दोष दिखाई दिया। आलू वातवर्द्धक होने के कारण हानिकारक था तो प्याज ज्यादा तामसिक था। अंत में वह भोजन के लिए कोई भी सब्जी नहीं चुन पाया और खाली हाथ घर लौट आया।

उधर ज्योतिषी महाराज नारियल तोड़ने के लिए एक नारियल पेड़ पर चढ़ गए। अभी वे आधे रास्ते ही चढ़े थे कि बगल के घर से एक कौआ बोला। ज्योतिषी वहीं ठिठक कर रुक गए। ग्रह-नक्षत्रों की वर्त्तमान स्थिति के अनुसार यह शकुन था या अपशकुन? और वे वहीं पेड़ पर लटके हुए इस घटना का ज्योतिष शास्त्र के अनुसार विश्लेषण करने में व्यस्त हो गए।

संगीतज्ञ की हालत इससे भी अधिक हास्यस्पद थी। वह चावल पका रहा था और उसका ध्यान बर्त्तन पर टिका था। थोड़ी देर में पानी उबलने लगा और बर्त्तन से एक तालयुक्त ध्वनि आने लगी। संगीतज्ञ अपनी विद्या का पक्का था, आवाज सुनते ही वह अपने हाथों से ताल देने लगा। पर बेचारा बर्त्तन तो संगीत के नियमों से अनजान था। उसकी ताल बार-बार बदलती रही। कुछ देर तक संगीतज्ञ इसे सहता रहा, लेकिन जब उससे से न रहा गया तो अपने हाथ में रखा करछुल बर्त्तन पर दे मारा, मानो वह किसी मूर्ख छात्र को सुधार रहा हो। मिट्टी का बर्त्तन टूट गया और सारा चावल जमीन पर बिखर गया।

तर्कशास्त्री का बृहत् बौद्धिक ज्ञान भी किसी काम न आया। वह एक घी भरी कटोरी लेकर आ रहा था कि रास्ते में उसके तर्कप्रिय मन में यह विचार कौंधा कि क्या कटोरी घी का आधार थी या घी कटोरी का! उसने अपने निषकर्ष का परीक्षण करने के लिए तुरंत कटोरी को पलट दिया। होना क्या था! घी नीचे गिरकर बर्बाद हो गया। इस नुकसान से तर्कशास्त्री को दु:ख तो हुआ, मगर उसे इस बात का संतोष भी था कि वह इस विषय में सही निष्कर्ष पर पहुँचा था और तर्कशास्त्र के ऐसे अन्य पेचीदे मामलों पर चिंतन करते हुए घर की ओर चल दिया।

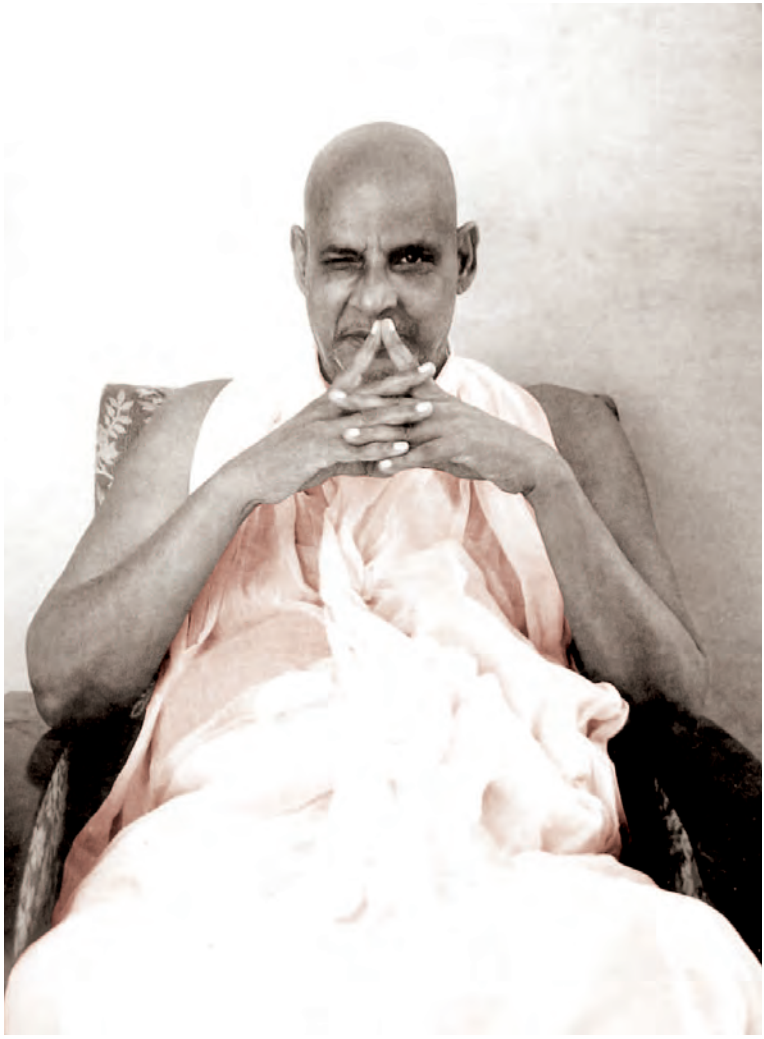

साधकों! केवल विद्वान् होना पर्याप्त नहीं, वास्तव में ज्ञानवान् और अनुभवी बनो। किताबी ज्ञान से सच्चा सुख नहीं मिल सकता। अनुभव से अर्जित ज्ञान ही आनन्द का वास्तविक स्रोत है। किताबों का कोरा ज्ञान शुष्क और नीरस होता है। तुम्हें अनुभव और सच्चा ज्ञान पाना है, जिसे किसी गुरु से ही प्राप्त किया जा सकता है। उनकी नि:स्वार्थ सेवा करो, उनके सान्निध्य में रहकर अध्ययन और साधना करो, उनके निर्देशों एवं आज्ञाओं का अक्षरश: पालन करो। तब तुम अवश्य अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल रहोगे।

जीवन के अनुभव

हमने प्याला नहीं पिया।
कभी नहीं,
पर
होश नहीं।

चिथड़ों में
देखी
शाहंशाही।

पूछो मत
किताबों के नाम।
इंजील, पुराण, कुरान।
हम इसमें चौपट।
हाँ, जीवन देखा है,
अनुभव पाया है।

खण्डहर मेरे घर,
जैसे
रत्नाकर।

मेरे दिल में
फैले
सात समन्दर,
विचरते चन्द्र दिवाकर।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

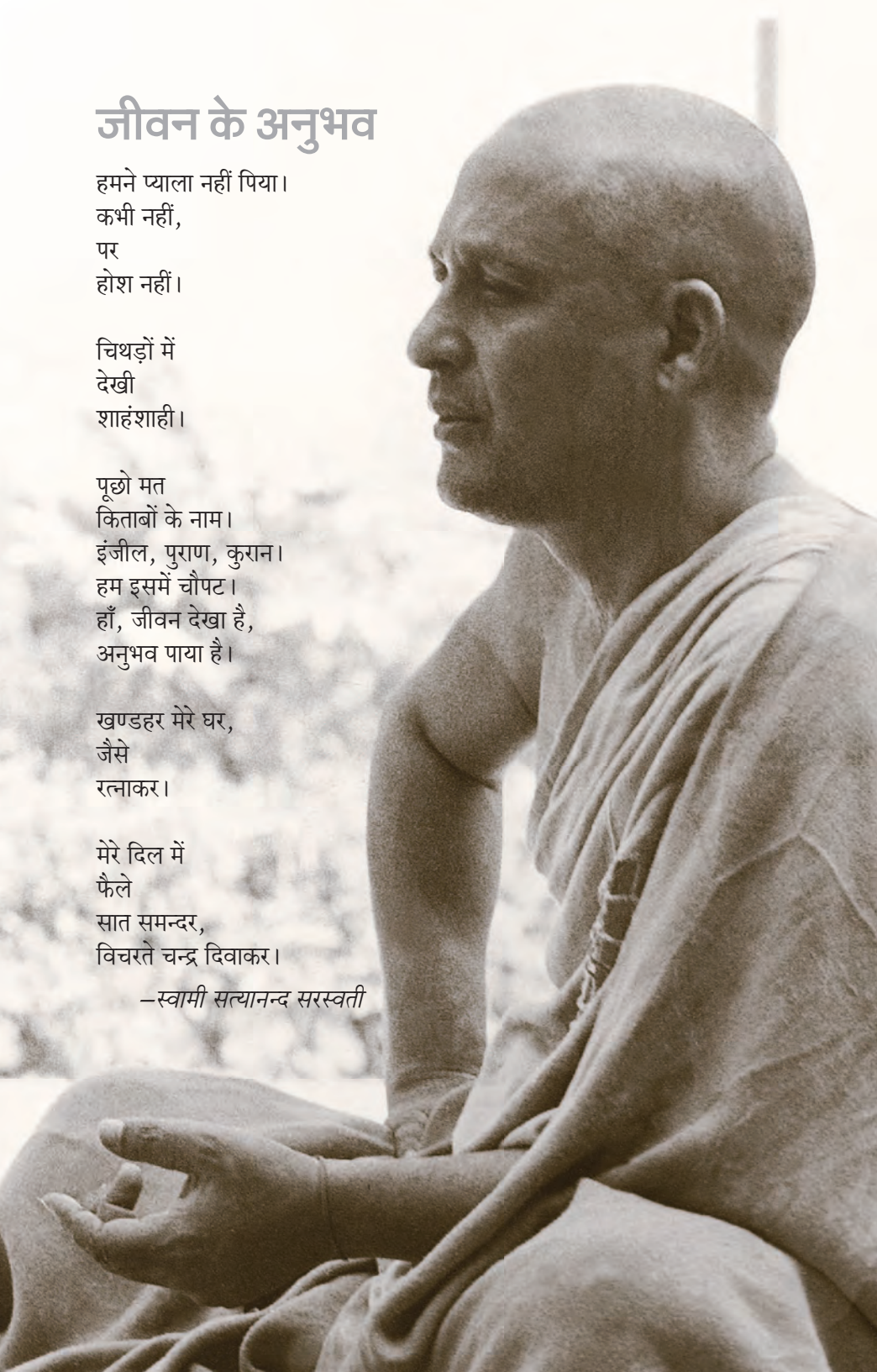

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

ईश्वर दर्शन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 486, ISBN: 81-85787-49-2

विश्व की विभिन्न संस्कृतियों द्वारा प्रतिपादित ध्यान की प्राचीन पद्धतियों पर यह एक व्यावहारिक एवं ज्ञानवर्द्धक पुस्तक है। इसमें स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए अपने स्रोत तक वापस जाने का सुगम तथा सुनिश्चित मार्ग प्रशस्त किया है। साथ ही इस परिवर्तनशील विश्व में अपने मानसिक संतुलन को बनाये रखने एवं परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ध्यान और उसमें आने वाली बाधाओं का समाधान प्रस्तुत किया है। ईश्वर दर्शन हर स्तर के प्रारम्भिक एवं उच्च साधकों के लिए उपयुक्त पुस्तक है और योग शिक्षकों के लिए आदर्श मार्गदर्शिका है।

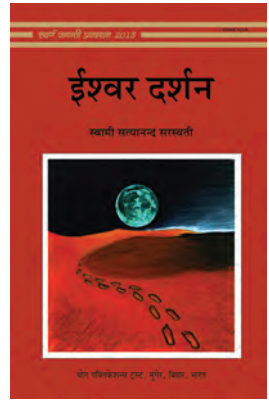

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

SATYANANDA YOGA BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट में सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ निम्नांकित वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब IOS उपकरणों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एप्प को निम्नांकित वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है–
https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786
यह एप्प बिहार योग विद्यालय द्वारा सभी योग साधकों के लिए प्रसाद स्वरूप है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2- जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1- जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।